आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१९ * अंक-१ * सितम्बर-२०२४

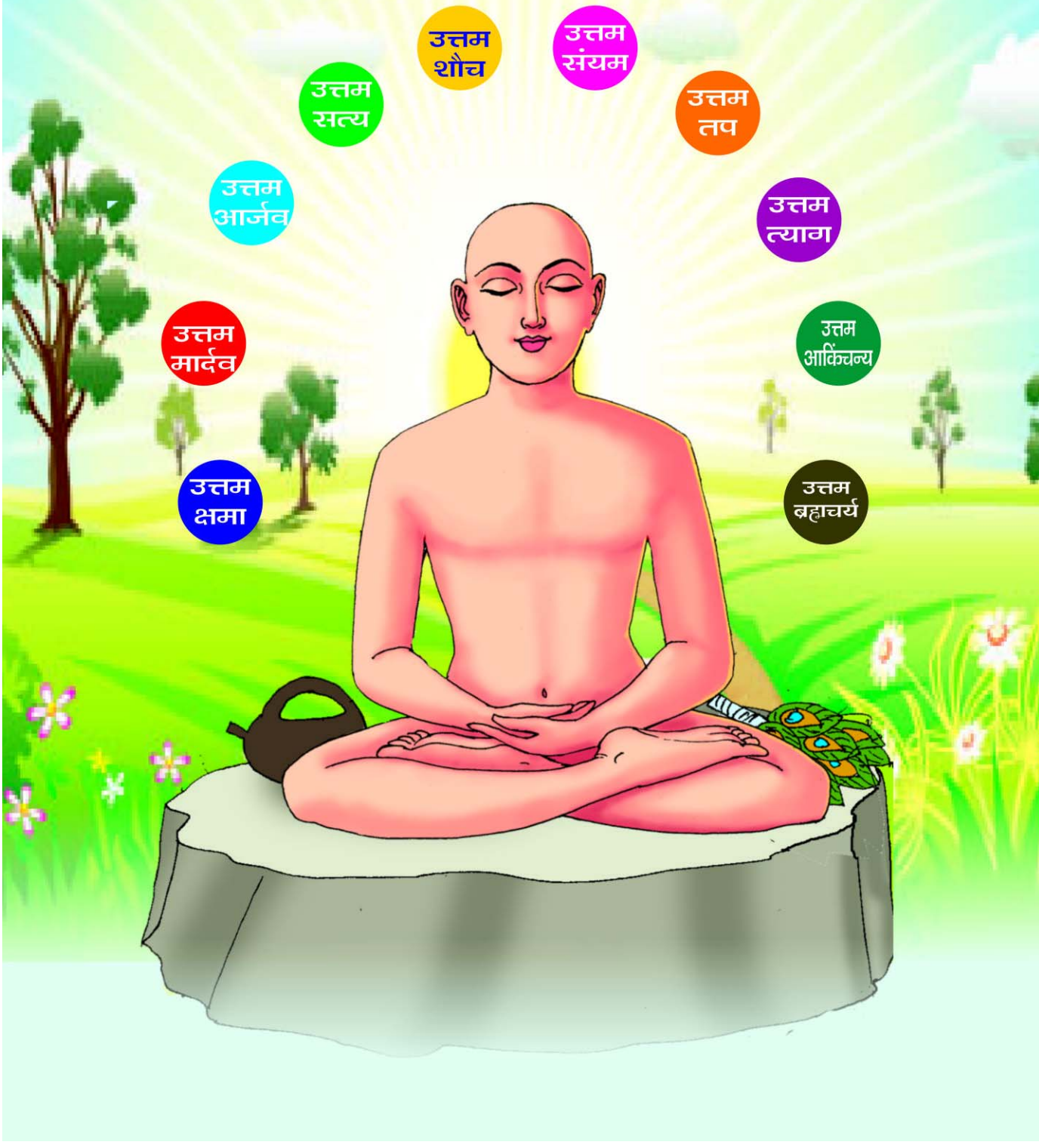

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● यह जो एकेन्द्रियादि तथा पृथ्वीकायिकादि 'जीव' कहे जाते हैं वे अनादि जीव-पुद्गलका परस्पर अवगाह देखकर व्यवहारनयसे जीवके प्राधान्य द्वारा (जीवको मुख्यता देकर) 'जीव' कहे जाते हैं। निश्चयनयसे उनमें स्पर्शादि इन्द्रियाँ तथा पृथ्वी आदि काय, जीवके लक्षणभूत चैतन्यस्वभावके अभावके कारण जीव नहीं है, उन्हींमें जो स्वपरकी ज्ञप्तिरूपसे प्रकाशित ज्ञान है, वही गुण-गुणीके कथंचित् अभेदके कारण, जीवरूपसे प्ररूपित किया जाता है।६२। (श्री अमृतचंद्राचार्य, पंचास्तिकाय टीका, गाथा-१२१ टीका)

● भावकर्मकी गुफामें राग-द्वेष-मोहके प्रकाशमें छिपा हुआ स्वरूप रहता है। वह प्रकाश तेरे राजाका अशुद्ध स्वांग है। उसमें तू खोजकर, डर मत, निःशंक होकर इस राग-द्वेष-मोहकी डोरीके साथ जाकर खोज। (यह राग-द्वेष-मोहकी डोरी) जिस प्रदेशसे उठी वही तेरा राजा है। डोरीको देख मत। जिसके हाथमें यह डोरी है उसे पकड़नेसे वह तुरंत मिलेगा। (तेरा नाथ) निजज्ञान महिमाको छिपाकर बैठा है (उसे) तू पहिचान। यह गुप्तज्ञान होने पर (तेरा) राजा छिपा हुआ नहीं रहेगा। (वहाँ तू) चेतना प्रकाशरूप चिदानंद राजाको प्राप्त करके सुखी होगा।६३। (श्री दीपचंदजी, अनुभवप्रकाश, पृ. ९)

● मोक्षार्थी सज्जनके लिए 'आत्मा' ऐसे दो अक्षर ही बस है उसमें जो तन्मय होता है उसका मोक्षसुख हथेलीमें है।६४। (श्री नेमीश्वर वचनामृत, श्लोक-८७)

● टांकीसे उकेरी मूर्तिके समान अविनाशी, स्वभावसे अमिट यह आत्मा है। दर्शनमोहनीय कर्ममलकी मूढ़तासे रहित यह आत्मा है। आत्मा परमात्मस्वरूप है। शुद्ध ज्ञानमयी है। कर्ममलरहित परमात्मा है।६५।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-६६२)

● द्रव्यके स्वभावकी अपेक्षासे देखा जाय तो (ज्ञायकभाव), दुरंत कषायचक्रके उदयकी (कषाय समूहके अपार उदयोंकी), विचित्रताके वशसे प्रवर्तमान जो पुण्य-पापको उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव, उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता (ज्ञायकभावसे जड़ भावरूप नहीं होता)। इसलिये वह प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है।६६। (श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार, गाथा-६)

वर्ष-19
अंक-1

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
September
A.D. 2024

दस धर्म

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

अर्थ :–उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य–ये दस धर्म हैं।

प्रश्न :–ये दस प्रकारके धर्म किसलिये कहे ?

उत्तर :–प्रवृत्तिको रोकनेके लिये प्रथम गुप्ति बतलायी, उस गुप्तिमें प्रवृत्ति करनेमें जब जीव असमर्थ होता है, तब प्रवृत्तिका उपाय करनेके लिये समिति कही है। इस समितिमें प्रवर्तनवाले मुनिको प्रमाद दूर करनेके लिये ये दस प्रकारके धर्म बतलाये हैं।

इस सूत्रमें बतलाया गया 'उत्तम' शब्द क्षमा आदि दसों धर्मोंमें लागू होता है; वह गुणवाचक शब्द है। उत्तम क्षमादि कहनेसे यहाँ रागरूप क्षमा न लेना किन्तु स्वरूपकी प्रतीति सहित क्रोधादि कषायके अभावरूप क्षमा समझना। उत्तम क्षमादि गुण प्रकट होनेपर क्रोधादि कषायका अभाव होता है, उसीसे आस्रवकी निवृत्ति होती है अर्थात् संवर होता है। क्षमादिकी व्याख्या निम्न प्रकार है—

(१) क्षमा–निन्दा, गाली, हास्य, अनादर, मारना, शरीरका घात करना आदि होनेसे पर अथवा ऐसे प्रसंगोंको निकट आते देखकर भावोंमें मलिनता न होना, सो क्षमा है।

(२) मार्दव–जाति आदि आठ प्रकारके मद के आवेशसे होनेवाले अभिमानका अभाव, सो मार्दव है; अथवा मैं परद्रव्यका कुछ भी कर सकता हूँ–ऐसी मान्यतारूप अहंकारभावको जड़मूलसे उखाड़ देना, सो मार्दव है।

(३) आर्जव–माया-कपटसे रहितपना, सरलता-सीधापनको आर्जव कहते हैं।

(४) शौच–लोभसे उत्कृष्टरूपसे उपशम पाना–निवृत्त होना, सो शौच-पवित्रता है।

(५) सत्य–सत् जीवोंमें–प्रशंसनीय जीवोंमें साधु-वचन (सरल वचन) बोलनेका जो भाव है, सो सत्य है।

प्रश्न :–उत्तम सत्य और भाषा-समितिमें क्या अंतर है ?

उत्तर :–समितिरूपमें प्रवर्तनेवाले मुनिके साधु और असाधु पुरुषोंके प्रति वचन-व्यवहार होता है और वह हित, परिमित वचन है। उन मुनिको शिष्यों तथा उनके भक्तों (श्रावकों)में उत्तम सत्यज्ञान, चारित्रके लक्षणादिक सीखने-सीखानेमें अधिक भाषाव्यवहार करना पड़ता है, उसे उत्तम सत्यधर्म कहा जाता है।

(६) संयम–समितिमें प्रवर्तनेवाले मुनिके प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचाने-करनेका जो भाव है, सो संयम है।

(७) तप–भावकर्मका नाश करनेके लिये स्वकी शुद्धताके प्रतपनको तप कहते हैं।

(८) त्याग–संयमी जीवोंको योग्य ज्ञानादिक देना सो त्याग हैं।

(९) आकिञ्चन्य–विद्यमान शरीरादिकमें भी संस्कार त्यागके लिये 'यह मेरा है' ऐसे अनुरागकी निवृत्तिको आकिञ्चन्य कहते हैं। आत्माके स्वरूपसे भिन्न ऐसे शरीरादिकमें या रागादिकमें ममत्वरूप परिणामोंके अभावको आकिञ्चन्य कहते हैं।

(१०) ब्रह्मचर्य–स्त्रीमात्रका त्याग कर, अपने आत्मस्वरूपमें लीन रहना ब्रह्मचर्य है। पूर्वमें भोगे हुए स्त्रियोंके भोगका स्मरण तथा उनकी कथा सुननेके त्यागसे तथा स्त्रियोंके पास बैठनेके छोड़नेसे और स्वच्छन्द प्रवृत्ति रोकनेके लिये गुरुकुलमें रहनेसे पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य पलता है। इन दसों शब्दोंमें 'उत्तम' शब्द जोड़नेसे 'उत्तम क्षमा' आदि दस धर्म होते हैं। उत्तम क्षमा आदि कहनेसे उसे शुभरागरूप न समझना, किन्तु कषायरहित शुद्धभावरूप समझना।

दस प्रकारके धर्मोंका वर्णन

क्षमाके निम्न ५ भेद हैं—(१) जैसे स्वयं निर्बल होने पर सबलका विरोध नहीं करता, उसी प्रकार 'यदि मैं क्षमा करूँ तो मुझे कोई परेशान नहीं करेगा' ऐसे भावसे क्षमा रखना। इस क्षमामें ऐसी प्रतीति नहीं हुई कि 'मैं क्रोधरहित ज्ञायक ऐसे त्रिकाल स्वभावसे शुद्ध हूँ' किन्तु प्रतिकूलताके भयवश सहन करनेका राग हुआ, इसलिये वह यथार्थ क्षमा नहीं है, धर्म नहीं है।

(२) यदि मैं क्षमा करूँ तो दूसरी तरफसे मुझे नुकसान न हो किन्तु लाभ हो–ऐसे भावसे सेठ आदिके उलाहनेको सहन करे, प्रत्यक्षमें क्रोध न करे, किन्तु वह यथार्थ क्षमा नहीं है, धर्म नहीं है।

(३) यदि मैं क्षमा करूँ तो कर्मबंधन रुक जायेगा, क्रोध करनेसे नीच गतिमें जाना पड़ेगा; इसलिये क्रोध न करूँ–ऐसे भावसे क्षमा करे, किन्तु यह भी सच्ची क्षमा नहीं है, यह धर्म नहीं है, क्योंकि उसमें भय है, किन्तु नित्य ज्ञातास्वरूपकी निर्भयता-निःसंदेहता नहीं है।

(४) ऐसी वीतरागकी आज्ञा है कि क्रोधादि नहीं करना। इसी प्रकार शास्त्रमें कहा है, इसलिये मुझे क्षमा रखना चाहिये, जिससे मुझे पाप नहीं लगेगा और लाभ होगा–ऐसे भावसे शुभपरिणाम रखे और उसे वीतरागकी आज्ञा माने किन्तु यह यथार्थ क्षमा नहीं है; क्योंकि यह पराधीन क्षमा है, यह धर्म नहीं है।

(५) 'सच्ची क्षमा' अर्थात् 'उत्तम क्षमा'का स्वरूप यह है कि आत्मा अविनाशी, अबन्ध, निर्मल, ज्ञायक है, उसके स्वभावमें शुभाशुभपरिणामका कर्तृत्व भी नहीं है। स्वयं जैसा है, वैसा स्वको जानकर, मानकर उसमें ज्ञाता रहना–स्थिर होना, सो वीतरागकी आज्ञा है और यह धर्म है। यह पाँचवीं क्षमा क्रोधमें युक्त न होना, क्रोधका भी ज्ञाता–ऐसा सहज अकषाय क्षमास्वरूप निजस्वभाव है। इस प्रकार निर्मल विवेककी जागृति द्वारा शुद्धस्वरूपमें सावधान रहना, सो उत्तम क्षमा है।

नोट –जैसे क्षमाके पाँच भेद बतलाये तथा उसके पाँचवें प्रकारको उत्तम क्षमाधर्म बतलाया, उसी प्रकार मार्दव, आर्जव, आदि सभी धर्मोंमें ये पांचों प्रकार समझना और उन प्रत्येकमें पाँचवाँ भेद ही धर्म है–ऐसा समझना।

(६) क्षमाके शुभ विकल्पका मैं कर्ता नहीं हूँ–ऐसा समझकर राग-द्वेषसे छूटकर स्वरूपकी सावधानी करना, सो स्वकी क्षमा है। स्व-सन्मुखताके अनुसार रागादिकी उत्पत्ति न हो वही क्षमा है। 'क्षमा करना, सरलता रखना' ऐसा निमित्तकी भाषामें बोला तथा लिखा जाता है, परन्तु इसका अर्थ ऐसा समझना कि शुभ या शुद्धपरिणाम करनेका विकल्प करना भी सहज स्वभावरूप क्षमा नहीं है। 'मैं सरलता रखूँ, क्षमा करूँ' ऐसा भंगरूप विकल्प राग है, क्षमाधर्म नहीं है, क्योंकि यह पुण्य-परिणाम भी बन्धभाव है, इससे अबन्ध अरागी मोक्षमार्गरूप धर्म नहीं होता और पुण्यसे मोक्षमार्गमें लाभ या पुष्टि हो–ऐसा भी नहीं है।

दसलक्षणी पर्व

(श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनमेंसे ता. ६-९-७८)

यह दसलक्षणी पर्व उसका प्रथम दिन है उत्तम क्षमा, यह उत्तमक्षमा आदि दस बोल है जो चारित्रका भेद है। चारित्र ही मोक्षका कारण है। इसलिये चारित्रमें दस प्रकारके धर्म आत्माका अनुभव शुद्ध चैतन्यकी दृष्टि और अनुभव हुआ हो और उसमें फिर चारित्रकी लीनता हुई हो, उसको यह दस प्रकारका धर्म होते है यह दस प्रकारके धर्ममें इससे सुख होता है, आनंद होता है। दस प्रकारके धर्म इसको कहते है कि जिसमें अतीन्द्रिय आनंद आता हो और इसमें अतीन्द्रिय आनंद है जो अतीन्द्रिय आनंद सुखस्वरूपी है। दस प्रकारके धर्म ऐसी बात है भाई ! वैसे तो उत्तम क्षमा, उत्तम क्षमा कहा जो समकित सहितकी, समकित बिना जो कुछ है वह क्षमा नहीं है वह तो अवरोधित कि हुई कषाय है।

मुनिधर्म क्षमा आदि भावोंसे दस प्रकारका है सुखके साथका है, सुख इससे होता है। अरे यह चारित्रधर्म जिसमें अतीन्द्रिय आनंद आता हो उसका नाम दस प्रकारका मुनिका धर्म कहनेमें आता है। ऐसी कठिन बात है। सुखके साथ सुख इससे होता है और सुख इसमें है अथवा सुखमें सार है यह दस प्रकारका धर्म सुखका सार, आनंदका सार उसमें है। अतीन्द्रिय आनंदका वेदन विशेष हो उसका नाम यहाँ दस प्रकारका धर्म है।

यह दसलक्षणी पर्व जो दस प्रकारका धर्म वह चारित्रका भेद है, सम्यग्दर्शन सहित अनुभव और चारित्र हो तो उसमें विशेष आनंद आता है उसको यहाँ दस प्रकारका धर्म कहनेमें आता है ऐसी बात है। सम्यग्दर्शनमें स्वरूपकी दृष्टि होनेसे आनंदका स्वाद आता है जो अल्प होता है और चारित्रमें उत्तम क्षमादिमें प्रचूर आनंद है इस क्षमामें महा आनंद आनंद आता है। यह दस धर्ममें प्रथम उत्तम क्षमा है।

श्रोता :–वीतरागभाव ही धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री :–यह वीतरागभाव वह ही वीतरागका दस प्रकारका धर्म है। उसका तो भेद बतलाया, शेष वीतरागभाव वह धर्म और चारित्रका दस प्रकारका धर्म वह वीतरागभाव। आहाहा ! ऐसी बात है। यह दस प्रकारका धर्म वीतरागभाव है। अधिकसे अधिक रागका अभाव करे तो उसे अतीन्द्रिय आनंदके उग्र अनुभवमें आनंद आता है उसको यहाँ दस प्रकारका धर्म कहनेमें आता है। यह तो क्षमा करके मैंने यह किया उसकी बात

(शेष देखे पृष्ठ २० पर)

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३५ (गाथा-३१)

* निज उपकारमें लग जाओं *

अज्ञानी जीवने परके साथ और कर्मके साथ मित्रता की है, इसलिये उसका संयोग होने पर आनंद मानता है। कर्मके उदयसे होनेवाले शुभाशुभभावमें भी आनंद मानता है इसलिये अज्ञानी जीवने वास्तवमें स्वयंका अहित करके कर्मका हित किया है, कर्मकी पुष्टि की है।

जैसे मित्र इकट्ठे होकर खेलते हो उसमें लड़ाई हो जाय और १० वर्षका बालक १२ वर्षके बालकको पीट दे और वह बालक अपनी माँ को शिकायत करे तो माता क्या कहती है ? अरे ! तू उससे बड़ा और वह छोटे बच्चेने तुझे पीट दिया ऐसी शिकायत करते तुझे शर्म नहीं आती है ? उसी प्रकार यह अज्ञानी शिकायत करता है कि अरे ! कर्मने मुझे मार डाला। उसे भगवान कहते हैं कि अरे मूरख ! तू भगवान आत्मा महा बलवान और कर्म तुझे परेशान करे ! इस प्रकार जीव और कर्मका वैर अनादिसे चला आ रहा है। परकी और विकारकी महिमा करता है वह अज्ञानी ही वास्तवमें कर्मका हित करता है। स्वयंके स्वरूपमें मिलान न करते कर्मके उदयमें मिलान करके कर्मको बलवान बनाता है अर्थात् कि नवीन कर्मका बंध करता है। इस प्रकार कर्मकी परंपरा चली आ रही है।

''जीव स्वयंकी भूलसे स्वयं विकार करता है'' यदि परसे अथवा कर्मसे विकार होता हो तो कर्मके हटनेसे विकार भी हट जाये लेकिन विकार जीवकी स्वयंकी भूलके कारण होता है इसलिये स्वयं विकारको टाले तो विकार टल जाता है। विकार होनेमें कर्मका उदय तो निमित्तमात्र है। कर्मका तो अपने आप स्वयंसे ही बंध हो जाता है। आत्मा कर्मबंधन करता नहीं है, यह वस्तुकी स्थिति है।

जीव स्वयंके शुद्धस्वरूपको भूल जाता है वह ही वास्तवमें भावबंधन है और उस भावबंधनके निमित्तसे द्रव्यबंधन होता है। जीवकी दो अवस्थाएँ है। एक तो स्वभावके आधीन अवस्था और दूसरी विकारके आधीन अवस्था है। विकारके आधीन अवस्थासे कर्मका उपकार होता है और स्वभावके आधीन अवस्थासे जीवका स्वयंका उपकार होता है।

पर ही प्रकाशे जीव तो हो आत्मसे दृग् भिन्न रे।	परमागम
परद्रव्यगत नहिं दर्श—वर्णित पूर्व तव मंतव्य रे ॥१६३॥	श्री नियमसार

जीव स्वयं पुरुषार्थहीन-नपुंसक बनकर परका माहात्म्य करता है। शास्त्रमें आता है कि भगवान आत्मा स्वयंके शुद्धस्वरूपका श्रद्धा-ज्ञान छोड़कर मात्र शुभभावकी रचना करता है और उसमें ही महिमा मानता है उस जीवका वीर्य स्वभावकी रचना करने हेतु नपुंसक हुआ है, वीर्यगुणका मूल कार्य तो स्वरूपकी रचना करना वह है, 'स्वरूपरचनाके सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।' स्वभावके आश्रयसे शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र-सुख-शांति प्रकट करना वह वीर्यका कार्य है। उसके बदले शुभाशुभभावकी रचना करे वह वीर्य ही नहीं है, नपुंसकता है।

अहो ! मुनिराज तो ''नागा बादशाहसे दूर है'' उन्हें किसीके पाससे चंदा इकट्ठा करना नहीं है इसलिये यथार्थ बात कहनेमें उन्हें किसका डर ?

स्वयंके स्वभावकी रचना करे वह आत्मवीर्य और विकारकी रचना करे वह तो कर्मवीर्य है। अज्ञानी विकारकी रचना करके कर्मका हित करता है। जिससे चतुर्गतिमें भटकता है। कर्मके हितकी बात की, अब मुनिराज आत्माका हित किस प्रकार हो उसकी विधि बताते हुए कहते है कि 'काललब्धिसे बलवान हुआ जीव स्वयंका हित करता है।' उसमें काललब्धि अर्थात् पुरुषार्थकी जागृतिका काल और काललब्धिका ज्ञान किसे होता है ? जिसे स्वयंके द्रव्यका ज्ञान हो उसे स्वयंकी काललब्धि-पर्यायका ज्ञान होता है। जो पर्याय द्रव्य पर दृष्टि करके द्रव्यका ज्ञान करता है उसे ही पर्यायका ज्ञान होता है।

जैसे सात तत्त्वकी श्रद्धा–'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'में मोक्षकी श्रद्धा, सर्वज्ञकी श्रद्धा, पर्यायकी श्रद्धा यह सभी श्रद्धा कब होती है कि जब ज्ञायक भगवान शुद्ध पूर्ण आत्मामें दृष्टि देने पर जो ज्ञान प्रकट होता है उसकी वर्तमान पर्यायमें मोक्ष, सर्वज्ञ आदि सभी पर्यायका ज्ञान होता है। क्योंकि स्वयंके द्रव्यके ज्ञान हुए बिना पर्यायका ज्ञान होता नहीं है और पर्यायका ज्ञान बिना आस्रव-बंध आदिका भी ज्ञान होता नहीं है।

इस प्रकार गुरुके उपदेशका निमित्त पाकर, स्वयंकी काललब्धि पकने पर पुरुषार्थसे स्वयंके स्वभावकी दृष्टि करता है। उसमें स्वयंका बल है, जो राग-द्वेष, निमित्तसे भिन्न और एक समयकी पर्यायसे भी अधिक-भिन्न स्वयंके स्वभावको जानता है उसे स्वभावका बल प्रकट हुआ है और कर्मका बल नाशको प्राप्त हुआ है। जो स्वयंका हित करना चाहता है वह स्वात्मोपलब्धिरूप मोक्षको चाहता है। जैसा स्वयंका स्वरूप है वैसा पर्यायमें प्रकट होता है उसका ही नाम मोक्ष है, उसमें ही स्वयंका परमहित है।

व्यवहारसे है ज्ञान परगत, दर्श भी अतएव है।
व्यवहारसे है जीव परगत, दर्श भी अतएव है ॥१६४॥

''मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, जो पाये वह पंथ, समजाया संक्षेपमें सकल मार्ग निर्ग्रंथ।'

श्रीमद् लघु वयमें ही यह सब कुछ लिख गये है। स्वयंके निर्मल आनंदकी दशा जिस मार्गसे प्राप्त हो वह मोक्षपंथ है, अन्य कोई मोक्षपंथ नहीं है। बुद्धिवाले जीव उसमें ध्यान दे तो स्वयंका हित कर सकते है। जिसकी बुद्धि आत्माको दुःख-समुद्रसे उगारे वह बुद्धिशाली है। आत्माको डुबोये वह बुद्धि बुद्धि ही नहीं है।

यहां कहते हैं कि स्वयं अपने माहात्म्य-प्रभावनाके वृद्धिगत होनेसे कौन स्वयंके स्वार्थकी साधना न कर सके ? कौन स्वयंका हितकी चाहना न करे ? जीव कर्मको माहात्म्य देकर उसका उपकार करता है तो कर्म स्वयंका हित क्यों न चाहे ? अर्थात् कि जीव स्वयंके स्वभावको भूलकर कर्मके उदयमें शामिल होता है तो उसका निमित्त पाकर नवीन कर्मका बंध होता है और जो जीव स्वयंके स्वभावकी महिमा करे तो स्वयंका हित होता है अर्थात् मोक्ष मिलता है।

तो अब कहते है कि तू परका उपकार छोड़कर स्वयंके उपकारमें लग जा !

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्॥३२॥
दृश्यमान देहादिनो मूढ करे उपकार,
त्यागी पर उपकारने, कर निजनो उपकार.

परका उपकार छोड़ और स्वयंका उपकार कर ! अर्थात् तेरी अधिकाई कर और शुभाशुभ राग और संयोग ठीक है तो मुझे ठीक है ऐसी परकी अधिकाई छोड़ दे ! यथार्थ वस्तुस्थिति जानकर अपने हितमें लग जा ! शरीर स्वस्थ रहे तो ठीक, कुटुम्ब सुखी रहे तो मुझे ठीक, दुनिया ठीक रहे तो मुझे ठीक ऐसा परका आश्रय करती तेरी मूढ बुद्धि तेरे अज्ञानको घोषित करती है इसलिये उस अज्ञानको तू छोड दे ! जब तक जीव परको पररूप नहीं जानता तब तक तो परका उपकार करता है। जहां परको पर जानता है वहाँ उसका उपकार करना छोड देता है, और स्वयंका उपकार करनेमें लग जाता है, इसलिये यथार्थ वस्तुस्थिति जानकर, तत्त्वज्ञानी बनकर, स्वयंके आधीन सुखी बनानेरूप आत्म-उपकार करनेमें तू तत्पर हो जा, यह ही भगवानका उपदेश है। (क्रमशः) ✻

है ज्ञान निश्चय निजप्रकाशक , इसलिये त्यों दर्श है ।
है जीव निश्चय निजप्रकाशक, इसलिये त्यों दर्श है ॥१६५॥

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

सम्यग्दृष्टिका सारा ही ज्ञान सम्यक् है। वह मोक्षमार्गरूप निजप्रयोजनकी साधना करता है।

अरे भाई, एक बार इस बातको लक्षमें तो ले, तो तेरा उत्साह परकी तरफसे निवर्तित हो जायेगा और तुझे स्वभावका उत्साह जागेगा। मूल स्वभावका ज्ञान करना यही मोक्षमार्गमें प्रयोजनरूप है।

कोई कहते हैं धर्मी हुआ और आत्माको जाना इसलिये परका भी सारा ही जानपना उसे हो जाता है। तो कहते हैं कि नहीं। परका सब कुछ जान ही ले ऐसा नियम नहीं है। ज्ञानका उघाड हो उसके अनुसार जानता है, वह कदाचित् उस प्रकारका उघाड नहीं होनेकी वजहसे डोरीको सर्प इत्यादि प्रकारसे अन्यथा जाने तो भी डोरी या सर्प दोनोंसे भिन्न मैं तो ज्ञान हूँ–ऐसा स्व-परकी भिन्नताका ज्ञान तो उसे यथार्थ ही रहता है, वह हटता नहीं है। रस्सीको रस्सी जान रहा होता तो भी उससे मैं भिन्न हूँ–इस प्रकार जानेगा तथा रस्सीको सर्प जाना तो भी उससे मैं भिन्न हूँ–ऐसा जानता है अतः स्व-परकी भिन्नता को जाननेरूप सम्यक्पनेमें तो कोई अंतर पड़ा नहीं है। आत्माका जानपना होनेसे परका सारा ही जानपना तुरंत खुल जाता है ऐसा कोई नियम नहीं है। अज्ञानी कोई ज्योतिष इत्यादि जानता हो और ज्ञानीको यह न भी आता हो, यहाँ बैठा बैठा (अज्ञानी) मेरु इत्यादिको विभंग ज्ञान द्वारा देख पाता हो और ज्ञानीके ऐसा उघाड (क्षयोपशम) न भी होवे। अज्ञानी गणित इत्यादि जानता हो, उसमें भूल नहीं पड़ती हो, फिर भी उस जानपनेकी धर्ममें कोई कीमत नहीं है। ज्ञानीको कदापि गणित इत्यादि न आता हो, हिसाब में भूल भी पड़ती हो, फिर भी उसका ज्ञान सम्यक् है, स्वको स्वपनेसे तथा परको परपनेसे साधित करनेरूप मूलभूत यथार्थपनेमें उसकी भूल होती नहीं है। अज्ञानी तो स्व-परको स्वभाव-परभावको एक दूसरेमें मिश्रित करके जानता है इसलिये उसका सारा ही ज्ञान मिथ्या है। बाहरके जानपनेका उघाड पूर्व क्षयोपशम अनुसार कम-ज्यादा हो, परंतु जो ज्ञान अपने भिन्न स्वभावको भूलकर जानता है वह अज्ञान है, तथा अपने भिन्न स्वभावका भान रखकर जो जानता है वह सम्यक्ज्ञान है।

प्रभु केवली निजरूप देखें और लोकालोक ना।
यदि कोइ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या ? १६६॥

संसारसे संबंधित कुछ जानपना न हो अथवा कम जानपना हो इससे, ज्ञान कोई मिथ्या नहीं हो जाता। और संसारकी चतुराई तथा होशियारी बहुत ज्यादा हो इससे ज्ञान कोई सम्यक् हो जाता नहीं है। उसका आधार तो शुद्धात्माके श्रद्धानके ऊपर है, शुद्धात्माका श्रद्धान जहाँ है वहाँ सम्यक् ज्ञान है, शुद्धात्माका श्रद्धान जहाँ नहीं है वहाँ मिथ्याज्ञान है। अतः बाहरका जानपना कम हो, तो ज्ञानीको उसका खेद नहीं है तथा बाहरका जानपना विशेष हो तो ज्ञानीको उसकी महिमा नहीं है। महिमावंत तो आत्मा है और उसे जिसने जान लिया उस ज्ञानकी महिमा है। अहो, जगतसे भिन्न मेरे आत्माको मैंने जान लिया है तो मेरे ज्ञानका प्रयोजन मैंने साध लिया है, इस प्रकार निजात्मज्ञानसे ज्ञानी संतुष्ट है–तृप्त है।

अहा, आत्मज्ञानकी महिमा अचिन्त्य है। इस ज्ञानकी महिमाको भूल करके बाहरी जानपनेकी महिमामें जीव रुके हुए हैं। संसारके किसी निष्प्रयोजन पदार्थके जाननेमें यदि भूल हुई तो हो, परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि हमारे आत्माको जाननेमें हमारी भूल नहीं होती...अपने आतमरामको हम नहीं भूलते। वह ज्ञानकी मस्ती और निःशंकता कोई अद्भुत है ! अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण स्वभावकी प्रतीतिका जोर उस ज्ञानके साथमें वर्तता है। इसलिये ऐसा जो सम्यग्ज्ञान है वह केवलज्ञानका अंश है–ऐसा अब कहते हैं।

❀ केवलज्ञानका अंश आत्मज्ञानकी अचिन्त्य महिमा ❀

''....जाननेमें पदार्थोंको विपरीतरूप नहीं साधता, इसलिये वह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोड़सा मेघपटल (बादल) विलय होनेसे जो कुछ प्रकाश प्रकट होता है वह सर्वप्रकाशका अंश है। जो ज्ञान मति-श्रुतरूप प्रवर्तता है वही ज्ञान बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानरूप होता है। इसलिये सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षासे तो जाति एक है।''

वाह ! देखो यह सम्यग्ज्ञानकी केवलज्ञानके साथ संधि ! सम्यक् मति-श्रुतने केवलज्ञानका अनुसंधान किया है। कौन कह सकता है–मतिश्रुतज्ञानको केवलज्ञानका अंश ? जिसने पूर्ण ज्ञानस्वभावको प्रतीतमें लेकरके उस स्वभावके आधारसे सम्यक् अंश प्रकट किया हो, वही पूर्णताके साथ संधि करके (पूर्णताके लक्षसे) कह सकता है कि जो यह मेरा ज्ञान है वह केवल ज्ञानका अंश है, केवलज्ञान नमूना है। परन्तु, रागमें ही जो लीन रहता है उसका ज्ञान तो रागका हो गया, उसको तो रागसे भिन्न ज्ञानस्वभावकी खबर

जो मूर्त और अमूर्त जड़ चेतन स्वपर सब द्रव्य हैं।
देखे उन्हें उसको अतीन्द्रिय ज्ञान है, प्रत्यक्ष है ॥१६७॥

ही नहीं, तब 'यह ज्ञान इस स्वभावका अंश है' ऐसा वह किस तरह जानेगा ? जब अपने ज्ञानको परसे व रागसे पृथक् ही नहीं जानता तब उसको स्वभावका अंश कहनेका अवसर उसे रहा ही कहाँ ? स्वभावके साथ जो एकता करे वही अपने ज्ञानको 'यह स्वभावका अंश है' ऐसा जान सके। रागके साथ एकतावाला यह बात नहीं समझ सकता।

अहा, यह तो अलौकिक बात है ! मतिश्रुतज्ञानको 'स्वभावका अंश' कहना अथवा 'केवलज्ञानका अंश' कहना यह बात अज्ञानीको समझमें नहीं आती, क्योंकि उसको तो 'राग' व 'ज्ञान' एक ही दिखता है। ज्ञानी तो निःशंक जानता है कि जितने रागादि अंश हैं वे सब मेरेसे अन्य भाव हैं, और जितने ज्ञानादि अंश हैं वे सब मेरे निजभाव हैं, वे मेरे स्वभावके ही अंश हैं, और वे ही अंश वृद्धिंगत होते हुए मुझे केवलज्ञान होनेवाला है।

प्रश्न :–चार ज्ञानको तो 'विभावज्ञान' कहा है, यहाँ तो उनको 'स्वभावका अंश' कैसे कहा ?

उत्तर :–उनको 'विभाव' कहा है वह तो अपूर्णताकी अपेक्षासे कहा है, न कि रागादिकी तरह विरुद्ध जातिकी अपेक्षासे। वे चारों ज्ञान हैं तो स्वभावका ही अंश...और स्वभावकी ही जाति; परंतु वे अभी अपूर्ण हैं और अपूर्णताके आश्रयसे पूरा ज्ञान नहीं खिलता, इसलिये पूर्णस्वभावका आश्रय करानेके लिये अपूर्ण ज्ञानोंको 'विभाव' कहा है। परंतु जैसे रागादि विभाव तो स्वभावसे विरुद्ध है–उसकी जाति ही अलग है, वैसे ज्ञानकी तो जाति अलग नहीं है, ज्ञान तो स्वभावसे अविरुद्ध जातिका ही है। जैसे पूर्ण प्रकाशके जगमगाते हुए सूर्यमेंसे बादलका विलय होने पर जो प्रकाशकिरणें झलकती हैं वे सूर्यप्रकाशकी ही अंश हैं; वैसे ज्ञानावरणादि कर्मबादल टूटनेसे सम्यक् मतिश्रुतरूप जो ज्ञानकिरणें प्रकटी वे केवलज्ञानके पूर्णप्रकाशसे जगमगाता जो चैतन्यसूर्य, उसीके प्रकाशका अंश हैं। सम्यक् मतिश्रुतरूप जितना अंश है वह सब चैतन्यसूर्यका ही प्रकाश है। जैसे दोजका चन्द्र बढ़ता हुआ पूर्णचन्द्र होता है वैसे सम्यक् मतिश्रुत भी बढ़ते हुए केवलज्ञान होता है। यद्यपि मति-श्रुतपर्याय तो बदल जाती है, वह स्वयं तो केवलज्ञान नहीं होती इसलिये पर्याय अपेक्षासे वहीका वही नहीं है, परन्तु सम्यक् जातिअपेक्षासे वही ज्ञान बढ़ता-बढ़ता हुआ–ऐसा कहलाता है। पांचों ही ज्ञान सम्यग्ज्ञानके ही प्रकार हैं इसलिये केवलज्ञान व मति-ज्ञान दोनों

जो विविध गुण पर्यायसे संयुक्त सारी सृष्टि है।
देखे न जो सम्यक् प्रकार, परोक्ष रे वह दृष्टि है ॥१६८॥

'सम्यक्पनेसे समान' हैं, दोनोंकी जाति एक है। जैसे एक ही पिताके पाँच पुत्रोंमें कोई बड़ा हो कोई छोटा हो, किन्तु हैं तो सभी एक ही पिताके पुत्र वैसे केवलज्ञानसे लेकर मतिज्ञान तक ये पांचों ही सम्यग्ज्ञान ज्ञानस्वभावके ही विशेष हैं। इनमें केवलज्ञान तो बड़ा महान पुत्र है, और मतिज्ञानादि यद्यपि छोटे हैं तो भी वे केवलज्ञानके ही बन्धु हैं, उसीकी जातिके हैं। शास्त्रमें (महापुराणमें) गणधरको 'सर्वज्ञपुत्र' कहा है, यहाँ भी कहते हैं कि मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञानका पुत्र है, सर्वज्ञताका अंश है। जैसे सिद्ध भगवानको पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद, व साधक सम्यग्दृष्टिको अपनी भूमिकाके अनुसार, अतीन्द्रिय आनंद, ये दोनों आनंद एक ही जातिके हैं; मात्र पूर्ण व अधूरेका ही भेद है, परन्तु जातिका भेद जरा भी नहीं; इसलिये सम्यग्दृष्टिका जो आनंद है वह सिद्ध भगवानके आनंदका ही अंश है, एवं आनंदकी तरह उसका मतिज्ञान भी केवलज्ञानका ही अंश है; पूरे व अधूरेका भेद होनेपर भी दोनोंकी जातिमें कोई भेद नहीं।

भाई, तेरा ज्ञान केवलज्ञानकी ही जातिका है, परन्तु कब ? जब कि अपने स्वभावका सम्यग्ज्ञान करले तब। किन्तु जो शुभरागको मोक्षका मार्ग मानता हो, व्यवहारके अवलम्बनसे मोक्षमार्ग होनेका मानता हो, जड़ देहकी अचेतन क्रियाओंको आत्माकी मानता हो और इन क्रियाओंसे धर्म होनेका मानता हो, उसके लिये तो कहते है कि भाई, तेरा सब ज्ञान मिथ्या है, सर्वज्ञ कथित नव तत्त्वकी भी तुझे खबर नहीं; सर्वज्ञस्वभावका (-केवलज्ञानका) जब तेरेको निर्णय ही नहीं, तब उस केवलज्ञानका अंश कैसा हो इसकी पहिचान कहाँसे होगी ? 'मेरा यह ज्ञान केवलज्ञानका अंश है'–ऐसा अच्छी तरह निर्णय करनेवालेकी दृष्टि व ज्ञानपरिणति अपने ज्ञानस्वभावके भीतर गहरी चली गयी होती है। वह शुभरागको धर्म मानकर उसमें ही नहीं रुक जाता; वह तो रागसे कहीं दूर ऐसे ज्ञानस्वभावके भीतरमें प्रवेश करता है। ऐसा ज्ञान ही केवलज्ञानकी जातिका होकरके केवलज्ञानको साधता है। सम्यक् मतिश्रुत यदि केवलज्ञानकी जातिका न हो और विजातीय हो, तो वह केवलज्ञानको कभी नहीं साध सकता। केवलज्ञानकी जातिका हो वही केवलज्ञानको साध सकता है। राग केवलज्ञानकी जातिका नहीं है, इसलिये वह केवलज्ञानको साध नहीं सकता; जो मतिश्रुत सम्यग्ज्ञान है वह केवलज्ञानकी जातिका है, इसलिये अंतरमें एकाग्र हो करके वह केवलज्ञानको साधता है। सम्यग्ज्ञानज्योति प्रकटी वह कभी बुझनेवाली नहीं, वह वृद्धिगत होती हुई केवलज्ञानको लेगी। (क्रमशः) ✻

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❊ निजधर्माधिकार ❊

अब निजधर्माधिकार कहते हैं।

निजधर्म–वस्तुस्वभाव। आत्मा स्वयं ज्ञानानन्दस्वभावी है, और निर्विकारपना उसका धर्म है। यहाँ विकारकी बात नहीं लेना है। आत्माके श्रद्धा–ज्ञान करने पर सम्यक् दशा प्रकट होती है। परका, रागका और स्वका यथार्थ ज्ञान होने पर स्वमें वीतरागदशा प्रकट होती है। यथार्थ ज्ञान होनेपर निजधर्म प्रकट होता है। सच्चा ज्ञान रमणताका अंश लेकर आता है। सच्ची प्रतीति और सच्चा ज्ञान होने पर अंशतः वीतरागता अवश्य प्रकटती है। यथार्थ ज्ञान होने पर पर्यायका द्रव्यमें एकत्व होता है वह धर्म है।

आत्मामें अनन्तगुण हैं। उनको पर्यायमें धारे (धारण करे) तब निजधर्म प्रकट होता है। मुझमें अनन्तगुण हैं, ऐसा निर्णय करने पर पर्यायमें वीतरागता प्रकट होती है। निमित्त वह मैं, राग वह मैं—ऐसा जो पर्याय धारती है उसने जीवके अनन्त धर्मोंको धारण नहीं किया है। यहाँ धर्म शब्द कहा है। 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' अपनी पर्याय अपनेको धारे, निमित्त और रागसे बचाए और स्वभावमें एकाग्र हो वह धर्म है।

भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप पर्यायधर्मोंको धारण कर रखता है। मैं शुद्ध जीव हूँ और विकारादि आस्रव हैं वह मेरा स्वरूप नहीं है। —ऐसे भेदज्ञानको धारण कर रखे वह धर्म है। मैं पर जीवको बचा सकता हूँ, परकी दया पाल सकता हूँ, दूसरेका कार्य कर सकता हूँ—ऐसा माननेवालेको धर्म नहीं होता। दूसरोंके धर्म तू धारण कर सकता है ? नहीं। धर्मी जीवको अल्प राग होता है, परन्तु रागरहित स्वभावका जोर वर्तता होनेसे वह अनन्तगुणोंको धारण कर रखता है—स्वभावकी पूर्णताकी शक्तिको धारण कर रखता है—टिका रखता है उसे धर्म कहते हैं।

धर्मीके बिना धर्म नहीं होता। जिसे धर्मी जीवके प्रति प्रेम वर्तता है उसे धर्मके प्रति

भगवान केवलि लोक और अलोक जाने, आत्म ना।
—यदि कोई यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या ? १६९॥

प्रेम वर्तता है। जिसे धर्मी जीवके प्रति अरुचि वर्तती है उसको धर्मके प्रति द्वेष वर्तता है। उसे अपना धर्म रुचा नहीं है, परन्तु उसने द्वेष धारण कर रखा है। धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी दशा, वह आत्माके बिना नहीं होती। धर्मीको अन्य धर्मीके प्रति भूमिकाके योग्य प्रेम आए बिना नहीं रहता। रागका भी वह काल है। 'अशुभवंचनार्थम्'—ऐसा लेख आता है वह व्यवहारकी भाषा है। अशुभ भाव होता था और उसे टाला–हटाया ऐसा नहीं है; अशुभका व्यय होनेके समय शुभ होता है ऐसा उसका कालक्रम है। धर्मी जीव समझता है कि मेरा धर्म मुझसे है, रागसे नहीं। इसप्रकार अनन्त जीव भी द्रव्यस्वभावके श्रद्धा–ज्ञानसे धर्मदशाको प्राप्त हुए हैं। निमित्त और रागसे धर्म नहीं होता। मुनिने निजधर्म धारण किया है, शरीरको धारण नहीं किया, विकल्पको धारण नहीं किया। अनन्तगुणोंको अपने श्रद्धा, ज्ञान और रमणतामें धारण कर रखा है वह धर्म है। शरीरकी क्रिया कर सके या छोड़ सके वह आत्माके अधिकारकी बात नहीं है। राग रागके कालमें होता है, परन्तु जो वीतरागता होती है वह धर्म है। साधक जीवको रागके समय अन्य धर्मीके प्रति प्रेम आता है किन्तु द्वेष नहीं आता, द्वेष आए तो वह धर्मी नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने धर्मको धारण करते है। आत्मा अपना स्वभाव धारण करता है, अजीव उसका अपना स्वभाव धारण करता है। आत्माका धर्म आत्मामें है, आत्माका धर्म परसे नहीं है और परकी पर्याय आत्मासे नहीं है। यहाँ धर्म अर्थात् स्वभाव अथवा गुणपर्याय। प्रत्येक द्रव्यने अपना स्वभाव स्वयं धारण किया है, अन्यने धारण नहीं किया, —ऐसा यथार्थ ज्ञान करना चाहिए।

आत्माका धर्म किसे कहें ? जानना, देखना और राग–द्वेष रहित दशामें स्थिर रहना वह धर्म है।

प्रश्न :—आपने धर्मकी व्याख्यामें कहा कि शरीर, मन, वाणीकी क्रिया हो या विकार हो वह धर्म नहीं है परन्तु अखण्ड शुद्ध चिदानन्दके श्रद्धा, ज्ञान और लीनता वह धर्म है। तब फिर जैसे आत्मामें निजधर्म हैं, वैसे ही पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि धर्म हैं; तब उनको धर्म क्यों नहीं कहा ? आत्माके ज्ञान, दर्शन और रागरहित दशाको निजधर्म कहते हो, परन्तु सर्व पदार्थोंका जो–जो स्वभाव है वह–वह निजधर्म है, तो सबको निजधर्म कहो, परन्तु मात्र दर्शन–ज्ञान–चारित्रको ही निजधर्म क्यों कहते हैं ? —ऐसा प्रश्न किया है।

है ज्ञान जीवस्वरूप, इससे जीव जाने जीवको।
निजको न जाने ज्ञान तो वह आतमासे भिन्न हो ॥१७०॥

समाधान :—प्रत्येक द्रव्यका स्वभाव अपने–अपने में है। त्रिलोकनाथने छह द्रव्य देखे हैं और वाणीमें भी वैसे ही आए हैं। उनका जो–जो स्वभाव है वह–वह निजधर्म कहा जाएँगा; परन्तु यहाँ उसकी बात नहीं है। यहाँ तो जो आत्माको तारे उसे निजधर्म कहते हैं। पुद्गलमें चाहे जो फेरफार हो फिर भी उसे दुःख नहीं है। यहाँ आत्माकी बात है। ज्ञानानन्दस्वभावमें रहते हुए संसारसे बच जाए उसे निजधर्म कहते हैं। अजीवको दुःख नहीं है। शरीर हड्डी और मांससे भरा है, वह किसी भी रूपमें हो, उसका धर्म उसके पास है, परन्तु तारणधर्म जीवमें है। जीवको संसारसे बचाकर मोक्षदशामें ले जाय वह धर्म है।

सजीवधर्म जीवमें है। अपनेको तथा परको जाने ऐसा प्रकाश–धर्म जीवमें है। पुण्य–पाप हटकर संवर और शान्ति प्रकट हो वैसा हितरूप धर्म जीवमें है। असाधारण धर्म, अविनाशीसुखरूपधर्म, चेतनाप्राणधर्म, परमेश्वरधर्म, सर्वोपरिधर्म, अनन्तगुणधर्म, शुद्धस्वरूप-परिणतिधर्म, अपारमहिमाधारकधर्म, निजशुद्धात्मस्वभावरूप धर्म—यह निजधर्म हैं। पाँच जड़द्रव्योंके धर्मकी बात नहीं करते। यहाँ जीवके निजधर्मकी बात करते हैं। जड़को हित–अहित नहीं हैं, जीवको हित करना है। जीवमें तारणधर्म है उसकी बात करते हैं।

(१) संसार तारण धर्म :—यह संसार आदि रहित है। कर्मके निमित्तसे जीव जन्मादि दुःख भोगता है। कर्मने दुःख नहीं दिया है, कर्म जड़ है। उसमें सम्बन्ध बाँधे तो दुःख भोगता है। वैसे दुःख या अधर्मसे तारे उसे तारणधर्म कहते हैं। दया, दान, काम, क्रोध भाव होते हैं वह परधर्म है—विकार है। अज्ञानी विकारको अपना स्वरूप मानता है। शरीरके धर्मको अपना माने, पुण्यसे अच्छा होगा, पूर्वपुण्य फलित हो तो ठीक, —ऐसी मान्यता वह अधर्मभाव है। पैसा, स्त्री, पुत्र और अनुकूलता अपनेको प्राप्त हुई मानता है; पुण्य–पाप विकारादि परधर्मको अपने मानता है तथा उन्हें हितकारी मानकर दुःख भोगता है। परधर्मको निजधर्म मानना वह दुःख है। संयोग, पैसा या शरीर सुख–दुःख नहीं देते; परवस्तुके स्वभावको अपना स्वभाव मानना वह दुःखका कारण है। खाने–पीनेके पदार्थोंमें सुख–दुःख नहीं है। लड्डू सुखरूप और विष दुःखरूप नहीं है। पैसा हो तो आनन्द रहे इत्यादि मान्यता भूल भरी है। परवस्तुका स्वभाव स्वतंत्र है, आत्मा उसमें कुछ कर नहीं सकता। परका स्वभाव आत्मा बदल सकता है अथवा परके स्वभावको अनुकूल–प्रतिकूल मानना वह संसार है। पर जीव बच जाता है वह उस जीवका धर्म है, तथापि मैं उसे बचाता हूँ, यह मान्यता दुःखका कारण है। पर प्राणी मुझसे मरा या बचा यह मान्यता दुःखका कारण है। (क्रमशः) ✻

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : २)

❀ तत्त्वनिर्णय करनेकी प्रेरणा ❀

प्रश्न :—आपने कहा कि दया, दानादिमें धर्म नहीं है, तो इससे तो पैसेवालोंकी बन आयेगी। क्योंकि अब वे पैसा क्यों खर्च करेंगे ?

उत्तर :—भाई यह तो सही है कि दान इत्यादिमें धर्म नहीं होता, किन्तु यह कौन कहता है कि तृष्णा कम नहीं करना चाहिये ? पहले तृष्णा तो कम करे, तृष्णा कम करनेके लिए कौन इनकार करता है ? तृष्णा कम करनेमात्रसे धर्म नहीं है, किन्तु यदि वह तृष्णा ही न घटाये तब तो पापभावमें ही जायेगा।

तत्त्वका निर्णय करनेके लिए सबसे पहले भगवानके द्वारा कहे गये आगमका सेवन करना चाहिए। इस कथनमें यह भी निहित है कि सच्चा आगम क्या है इसका निर्णय कर लिया जाय। युक्तिका अवलम्बन चाहिये। धर्म तो अपूर्व वस्तु है, वह ऐसी वस्तु है जिसे अनादिसे कभी प्राप्त नहीं किया। यह साधारण वस्तु नहीं है। जो ऐरे गैरे कहते हैं वह सच्चा मार्ग नहीं है। क्योंकि जैसा वे कहते हैं वैसा तो अनन्तबार जीव कर चुका है, किन्तु इससे इसका संसार परिभ्रमण नहीं मिटा। इसलिए धर्म वस्तु उससे कोई दूसरी ही है, इसप्रकार सत्शास्त्र द्वारा तथा प्रबल युक्तियों द्वारा निर्णय करना चाहिए, तथा परम्परा गुरुओंका उपदेश और स्वानुभव इन चारों द्वारा तत्त्वका निर्णय करना चाहिए। ऐसे चारों प्रकारके द्वारा आत्माकी पहिचान करनी चाहिए।

आदमी संसारके कामकी विधि बराबर समझता है, वह उस विधिमें उलटा नहीं करता। हलुआ बनाना हो तो पहले घीमें आटेको सेंकता है और उसके बाद शक्करका पानी डालता है; किन्तु पहले शक्करके पानीमें आटेको डालकर सेके तो हलुआ नहीं बनेगा। इसी प्रकार धर्मके लिए भगवानने पहली विधि आत्माका निर्णय करना बताई है, उसको समझे बिना उलटा करे तो धर्म नहीं होगा। जब तक आत्माके स्वभावका तत्त्वसे यथार्थ निर्णय नहीं किया जाय तब तक जितने भी व्रत, तप आदि किये जाते हैं वे सब

संदेह नहिं, है ज्ञान आत्मा, आतमा है ज्ञान रे।
अतएव निजपरके प्रकाशक ज्ञान-दर्शन मान रे ॥१७१॥

शक्करके पानीमें आटेको डालकर हलुआ बनानेके समान हैं, जो कभी भी नहीं हो सकता। यदि विधिमें फर्क पड़ जाय तो निश्चित कार्य नहीं होता। धर्मकी विधिमें पहले आत्माका निर्णय करनेरूप जो सम्यग्दर्शन है वह घीमें आटेको सेकनेके समान है; और सम्यग्दर्शनके बिना व्रत, तप इत्यादि सब कुछ करने लग जाय तो वह शक्करके पानीमें आटेको डालनेके समान है। तात्पर्य यह है कि पहले सम्यग्दर्शनरूपी विधिके बिना धर्म नहीं होता।

तत्त्वनिर्णयके लिये जिनवचन चतुर अनुयोगमय है उसका रहस्य ज्ञातव्य है, उसमें द्रव्यानुयोगमें द्रव्य-गुण-पर्याय आदि वस्तुस्वरूपका कथन होता है। चरणानुयोगमें रागको घटाने और परिणाम सुधारनेके लिए मुनि–श्रावकके आचरणका कथन होता है। करणानुयोगमें कर्मादिके स्वरूपादिकी और स्वर्गलोक, मध्यलोक और अधोलोककी रचनाकी तथा गुणस्थानादिके सूक्ष्म परिणामोंकी बात होती है। और प्रथमानुयोगमें धर्मकथाओं द्वारा तीर्थंकरादि पुराणपुरुषोंका जीवनचरित्र होता है; ऐसे चारों अनुयोगके अभ्यासके द्वारा सभी पहलुओंसे मिलान करके तत्त्वका निर्णय करना चाहिए। आत्मा क्या वस्तु है, नवतत्त्व क्या है? इत्यादिका निर्णय न हो तो धर्म नहीं होगा। यदि कोई आत्माका निर्णय किये बिना व्रत, तप करने लग जाय तो उसको मात्र पुण्यबन्ध होगा, आत्मकल्याणरूप धर्म नहीं होता।

भगवानके वचन अपार हैं, श्री गणधरदेव भी उसका पूरा पार नहीं पा सके। इसलिए वीतरागदेव द्वारा कहे गये तत्त्वोंमें प्रयोजनभूत तत्त्वोंका पहले निर्णय करना चाहिए। यदि प्रयोजनभूत वस्तुमें फर्क आ गया तो तत्त्वका निर्णय सम्यक् नहीं होगा। संसारमें किसीके दो दुकानें हों, उनमें एक हो हीरा-माणिककी बड़ी दुकान और दूसरी हो बिनौलेकी छोटी दुकान, उनमेंसे हीरा माणिककी दुकानमें नफा हो और बिनौलेकी दुकानमें नुकसान हो तो वह नुकसान पूरा हो सकता है। किन्तु यदि हीरा-माणिककी दुकानमें नुकसान हो और बिनौलेकी दुकानमें लाभ हो तो हीरा-माणिककी दुकानकी हानि पूरी नहीं की जा सकती। वहाँ व्यापारी हीरेकी दुकानकी ओर बराबर ध्यान रखता है क्योंकि मूल रकम हीरेकी दुकानमें हैं। इसीप्रकार आत्मस्वरूपके निर्णयका उद्यम तो जवाहरातकी दुकान जैसा है, और शुभभाव तो बिनौलेकी दुकान जैसा है, आत्माके स्वरूपके निर्णयमें जो भूल होती है वह जवाहरातकी दुकानकी हानिकी तरह है, और जो

जानें तथा देखें तदपि इच्छा विना भगवान है।
अतएव 'केवलज्ञानी' वे अतएव ही 'निर्बन्ध' है ॥१७२॥

दया, दान, भक्ति इत्यादिक पुण्यभावमें लगना है सो बिनौलेकी दुकानके मुनाफेकी तरह है। किन्तु उस छोटेसे मुनाफेसे उस बड़े भारी नुकसानकी पूर्ति नहीं हो सकती जो नुकसान स्वरूप निर्णयकी भूलसे होता है।

पहले काश्तकारका उदाहरण दे चुके हैं; उसमें कहा है कि जब वह नगद रकमका ही इन्कार करता है तो उसे वहीखातेमेंसे कैसे निकाला जाय ? इसी प्रकार प्रयोजनभूत रकमका निर्णय किये बिना यदि कोई पुण्य करता है और तत्त्व समझनेका इन्कार करता है तो उसको धर्म नहीं है। इसलिए चौरासीके बहीखातेमेंसे उसका छुटकारा नहीं हो सकता; इसलिए हे जीव ! तुझे यही सीखना चाहिए कि जिससे जन्म-मरणका नाश हो, तत्त्वका निर्णय सबसे प्रथम करना चाहिए। संसार भले पागल कहे या निन्दा करे किन्तु इस तत्त्वका निर्णय करनेसे मत चूकना। श्री समयसारजीमें कहा है कि : ''तू एक बार जिज्ञासा तो कर कि यह चैतन्य तत्त्व क्या है ? प्रतिष्ठामें, कीर्तिमें, धन-सम्पत्तिमें और कुटुम्ब इत्यादिमें अपनापन मानकर जो उसमें एकतान हो रहा है उसे भूलकर भीतर आत्मामें एकबार डुबकी लगाकर उसकी तलतक पहुँच जा। जैसे कोई गोताखोर कुएमें डुबकी लगाकर उसकी तलतक पहुँच जाता है उसी प्रकार आत्माकी तलतक पहुँचनेका प्रयत्न कर। दुनियाँको भूलकर—अरे ! मरकरके भी अंतर्तत्त्व क्या है यह जाननेके लिए आत्माके भीतर एकबार डुबकी तो लगा। मरकर भी अर्थात् चाहे जैसी प्रतिकूलता और कठिनाईयोंको झेलकर भी एकबार आत्माको जाननेका कुतुहल कर–तीव्र जिज्ञासा कर। तुने अनन्तबार शरीरके लिए आत्माको गँवा दिया किन्तु एकबार आत्माके लिए सारा जीवन दे दे, जिससे तुझे भव न रहे। दुनियाको भूल जा, दुनियाकी परवाहको छोड़कर आत्मरसमें मस्त हो जा और पुरुषार्थ करके अंतर्पटको तोड़ दे।''

प्रयोजनभूत तत्त्वोंका दिग्दर्शन

मुमुक्षुको अपने आत्महितके लिए मूल तत्त्वोंकी पहिचान करनी चाहिए। अपने प्रयोजनभूत तत्त्वोंकी पहिचानके बिना कल्याण नहीं होता। जैसे लोग किसी पेढीको चलाते हुए अमुक लाभदायक मुख्य वस्तुका व्यापार करते हैं, उसीप्रकार त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेवकी धर्मकी जाज्वल्यमान पेढीमें मूल प्रयोजनभूत अनेक रकमें हैं, उन्हें निर्णयपूर्वक अवश्य जानना चाहिए। कहा है कि :—

रे बन्ध कारण जीवको परिणामपूर्वक वचन हैं।
है बन्ध ज्ञानीको नहीं परिणाम विरहित वचन है ॥१७३॥

अन्तो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तं णवर सिक्खियव्वं जिं जरमरणक्खयं कुणहि॥९८॥ (पाहुड-दोहा)

श्रुतियाँ अनन्त हैं और काल थोड़ा है तथा हम अल्पबुद्धिवाले हैं, इसलिए हे जीव ! तुझे वह सीखना चाहिए जिससे तू जन्म-मरणका नाश कर सके। मोक्षमार्गमें कौन कौनसी वस्तुएँ जानना आवश्यक हैं ? उनमेंसे कुछ यहाँ बताई हैं। सबसे पहला है—जिनधर्म।

(१) जिनधर्म :—त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेवकी धर्मकी जाज्वल्यमान पेढी, जहाँ शुद्ध मार्ग प्रवर्तित करनेवाली दिव्यवाणी खिर रही हो उसके मार्गका क्या कहना ! जिनधर्म ही परम सत्य धर्म है, उसे पहचान कर उसका निर्णय करना चाहिए। वीतरागता ही जिनधर्म है; जो राग है वह धर्म नहीं है।

(२) जिनमत :—जिनने आत्माके स्वभावसे राग-द्वेषको जीत लिया वे जैन हैं। उनका मत क्या है, वे क्या कहते हैं ? यह जानना चाहिए।

(३-४) देव-कुदेव :–अरहन्त और सिद्ध दोनों देव हैं उनका लक्षण क्या है ? यह जानना चाहिए। जो उनसे विरुद्ध है वे कुदेव हैं, इनका सेवन छोड़ना चाहिए।

(५-६) गुरु-कुगुरु :–सच्चा गुरु कौन है ? सब अपनेको सच्चा ही कहलवाते हैं किन्तु उनमें सच्चा कौन है ? और दम्भी कौन है ? इसका निर्णय करना चाहिए।

(७-८) शास्त्र-कुशास्त्र :–अनेक शास्त्र हैं उनमेंसे सच्चे कौनसे हैं और खोटे कौनसे हैं ? त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेवकी वाणीमें कहे गये तत्त्वके स्वरूपको दिखानेवाले सच्चे शास्त्र कौनसे हैं ? और उनसे विरुद्ध कौनसे हैं इसका निर्णय करना चाहिये।

यह सब प्रयोजनभूत तत्त्व हैं। समस्त प्रयोजनभूत तत्त्वोंका यथार्थ निर्णय करना चाहिए। प्रयोजनभूत तत्त्वोंका निर्णय किये बिना तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता। और तत्त्वज्ञानके बिना कल्याण नहीं होता। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ६ का शेष भाग) (दसलक्षणी धर्म)

नहीं है। यह तो उत्तम क्षमा और उत्तम मार्दवादि... अंतरमें आत्मा आनंद प्रभु उसके अंतर अनुभवमें अतीन्द्रिय स्वादका आना उसका नाम सम्यग्दर्शन है और चारित्र विशेष आनंदका आना उसका नाम चारित्र है और उसमें यह दस प्रकारका धर्म और सुखके स्वादमें वृद्धि होती है।

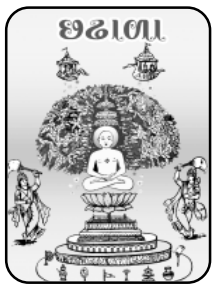

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा-१४)

गृहीत मिथ्याचारित्रका स्वरूप और उसे छोड़नेका उपदेश

जो ख्याति लाभपूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह।
आत्म-अनात्मके ज्ञानहीन, जो जो करनी तत करन छीन॥१४॥

शुद्ध आत्माका उग्ररूपसे प्रकाशित होना वह तप है। शुभरागका विकल्प भी जिससे बाह्य, अनात्मा है ऐसे आत्मस्वरूपका भान बिना तप कैसा? तपमें तो अंतरकी शांत अतीन्द्रिय आनंदका अनुभव है। अतीन्द्रिय आनंदमें लीनतामें आहारादिकी वृत्ति उत्पन्न न हो वह उपवास तप है। ऐसी शुद्धताके अनुभव बिना मात्र रागरूप बाह्यतप करके अज्ञानी नववीं ग्रैवेयक तक गया; उस समय गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका तो उसे त्याग था, क्योंकि उसके त्याग बिना ग्रैवेयकमें जा नहीं सकता। वस्त्र सहित जो चारित्रदशा माने उसे तो गृहित मिथ्याचारित्र है, वह तो ग्रैवेयकमें जा नहीं सकता; अनेक प्रकारके गृहीत मिथ्यात्वादिको छोड़कर दिगम्बर साधु होकर, पंचमहाव्रत पालकर नववीं ग्रैवेयक गया लेकिन आत्माके अनुभव बिना जीवका संसार परिभ्रमण मिटा नहीं, और मोक्ष हुआ नहीं; क्योंकि उसने अगृहीत मिथ्यात्वादिको तो छोड़ा नहीं और शुभरागके वेदनको चारित्र मानकर उसके ही वेदनमें वह रुक गया, रागसे भिन्न आत्माका वेदन उसने नहीं किया।

सम्यग्ज्ञान सहितकी वीतरागतामें ही यथार्थ 'ज्ञानतप' (चैतन्य-प्रतपन) है; उसके अतिरिक्त देहबुद्धिसे जो कुछ भी करे वह सभी 'बालतप' (अज्ञान तप) है, उससे धर्मका कोई लाभ नहीं है, लेकिन उसे धर्म माननेसे मिथ्यात्वरूप भारी नुकसान होता है। अहा, चारित्रदशा तो जगत् पूज्य, महान आनंदरूप है, उसमें क्लेश कैसा? मोक्षमार्गका चारित्र किसे कहना उसकी अधिकांशको खबर नहीं है; अभी तो ऐसे चारित्रवंत साधुको देखना भी दुर्लभ है। चारित्र वह तो उत्तम संवर और निर्जरा है; चारित्रवंत मुनि वे सिद्धप्रभुके पडोसी है।

है बन्ध कारण जीवको इच्छा सहित वाणी अरे।
इच्छा रहित वाणी अतः ही बन्ध नहिं ज्ञानी करे॥१७४॥

आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है, चारित्र उसका वीतरागभाव है, पुण्य-पाप आस्रव है, देहकी क्रियाएँ जड़ है–ऐसे तत्त्वोंकी भिन्नताके भान बिना यथार्थ चारित्र होता नहीं है। सम्यग्दर्शन बिनाकी सभी प्रवृत्तियाँ वे मिथ्याचारित्र है। चारित्र वह तो वीतरागभावरूप धर्म है। चारित्रके आनंदके पास पुण्यको भी धर्मी जीव हेयरूप जानता है। यदि यथार्थरूपसे विषयोंकी भावना सहित तपादि करे उसे पापका पोषण है, लेकिन शुभभावसे करे तो भी कहते है कि जिसे आत्माकी खबर नहीं वह तो कही गहराईमें मानादिकी वृत्तियाँ पड़ी ही है। जो ग्रैवेयकमें जाता है उसके माने हुए देव-गुरु भी सच्चे है, और उसके मनमें मायाचार नहीं है या किसीको दिखानेरूप क्रिया करता नहीं है। किन्तु भेदज्ञान बिना गहराईमें (सूक्ष्म अभिप्रायमें) रागकी मीठाश विद्यमान है, सूक्ष्म रागके वेदनमें धर्मबुद्धि है अर्थात् रागसे पृथक् होकर स्वभावका अनुभव करता नहीं है। और रागको जो धर्म मानता है वह रागके फलकी इच्छाका कैसे त्याग करेगा ? नहीं छोड़ेगा।–इसलिये कुन्दकुन्द स्वामी कहते है कि वह अज्ञानी जीव भोगहेतु धर्मको (पुण्यका) सेवन करता है, लेकिन मोक्षहेतु धर्मको (सम्यग्दर्शनादिको) जानता नहीं है।–ऐसे जीव भी संसारमें ही भटकते है; तो फिर जो मिथ्यात्वपोषक कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका सेवन करते है वे तो गृहीत मिथ्या-श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रसे संसारमें अधिक कष्टको पाते है–अधिक दुःखको प्राप्त करता है। इसलिये हे जीव ! ऐसे मिथ्याभावोंको तू छोड़।

जिन्हें सम्यग्दर्शन और भेदज्ञान नहीं है उन्हें, आत्मा कैसे प्रसिद्ध हो उसकी तो खबर नहीं है अर्थात् कहीं बाह्यमें प्रसिद्धिकी (यश-आदरसत्कार आदिकी) भावना विद्यमान है। धर्मीको तो सम्यग्दर्शनमें अतीन्द्रिय आनंदके स्वादसहित भगवान आत्मा प्रसिद्ध हुआ है;– और वह ही वास्तविक प्रसिद्धि है–जिसे 'आत्मप्रसिद्धि' कहा जाता है। जगत्में प्रसिद्ध हो तो उसमें आत्माको क्या लाभ ? भाई, भीतर तेरेमें स्वयंमें तो तूने अपने आत्माकी प्रसिद्धि की नहीं, फिर बाह्यमें प्रसिद्धि हो उसमें तुझे क्या लाभ ? और यदि स्वानुभूति द्वारा आत्मा स्वयं स्वयंमें प्रसिद्ध हुआ तो फिर जगतमें अन्यके पाससे प्रसिद्धि प्राप्त करनेका क्या काम है ? वास्तवमें अंतरकी स्वानुभूतिमें भगवान आत्मा स्वयं प्रसिद्ध हुआ है वहाँ बाह्यप्रसिद्धिका क्या काम है ! यहां तो कहते है कि जिन्हें आत्माकी प्रसिद्धि हुई नहीं–जिसका आत्मा मोहसे आच्छादित है, वह जो मिथ्या आचरण करता है वह सभी गृहीत मिथ्याचारित्र है; उसे दुःखका कारण जानकर हे जीव ! उसे छोड़ दे... और आत्माको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा प्रसिद्ध कर।–अब इस बातको अंतिम गाथामें कहते है। (क्रमशः) ✻

अभिलाषयुक्त विहार, आसन, स्थान जिनवरको नहीं।
निर्बन्ध इससे, बन्ध करता मोह-वश साक्षार्थ ही ॥१७५॥

सम्यग्दर्शन ही आत्माका धर्म

यह आत्मकल्याणका छोटेसे छोटा (सबसे हो सके ऐसा) उपाय है। अन्य सभी उपाय छोड़कर यह ही करनेका है। हितका साधन बाह्यमें लेशमात्र नहीं है। सत्समागम द्वारा एक आत्माका ही निश्चय करना। वास्तविक तत्त्वकी श्रद्धा बिना अंतरमें वेदनकी तालावेली नहीं जमेगी। प्रथम अंतरमेंसे सत्का स्वीकार आये बिना सत् स्वरूपका ज्ञान नहीं होगा और सत् स्वरूपके ज्ञान बिना भवबंधनकी बेडी तूटेगी नहीं। भवबंधनके अंतर बिना जीवन किस कामका ? भवके अंतकी श्रद्धा बिना कदाचित् पुण्य करे तो उसके फलमें राज्यपद या इन्द्रपद मिले, लेकिन उसमें आत्माको क्या ? आत्माके भान बिना तो वह पुण्य और इन्द्रपद सभी धूल समान ही है, उसमें आत्माकी शांतिका अंश भी नहीं है। इसलिये प्रथम श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभावका दृढ़ निश्चय करने पर प्रतीतिमें भवकी शंका ही रहती नहीं है और जितनी ज्ञानकी दृढ़ता होती है उतनी शांति वृद्धिगत होती जाती है।

प्रभु ! तू कैसा है, तेरी प्रभुताकी महिमा कैसी है, उसको तूने जाना नहीं है। तेरी प्रभुताके भान बिना तू बाह्यमें जिसका गुणगान करता है उससे तेरी प्रभुताको कोई लाभ नहीं है। परका गुणगान किया लेकिन स्वयंके गुणगान गाये नहीं; भगवानकी प्रतिमाके सामने कहे कि 'हे नाथ, हे भगवान ! आप अनंत ज्ञानके स्वामी हो।' वहाँ सामने भी ऐसा ही प्रतिघोष आता है कि 'हे नाथ, हे भगवान ! आप अनंत ज्ञानके स्वामी हो'.... अंतरमें पहिचान हो तो वह उसे समझे ! पहिचान बिना अंतरमें यथार्थ प्रतिघोष (निःशंकता) जागृत नहीं होगी।

शुद्धात्मस्वरूपका वेदन कहो, ज्ञान कहो, श्रद्धा कहो, चारित्र कहो, अनुभव कहो के साक्षात्कार कहो–जो कहो वह यह आत्मा ही है। अधिक क्या कहे ? जो कुछ है वह यह एक आत्मा ही है, उसे ही पृथक्-पृथक् नामसे कहा जाता है। केवलीपद, सिद्धपद अथवा साधुपद यह सभी एक आत्मामें ही समाहित है। समाधिमरण, आराधना आदि नाम भी स्वरूपकी स्थिरता ही है। इस प्रकार आत्मस्वरूपका अनुभव वह ही सम्यग्दर्शन है और वह सम्यग्दर्शन ही सर्व धर्मका मूल है, सम्यग्दर्शन ही आत्माका धर्म है।

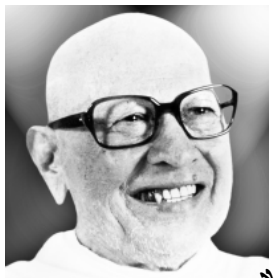

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न—वर्तमान पर्यायमें तो अधूरा ज्ञान है, उसमें पूरे ज्ञानस्वभावका ज्ञान कैसे हो?

उत्तर—जिस प्रकार आँख छोटी होने पर भी सारे संसारको जान लेती है; उसी प्रकार पर्यायमें ज्ञानका विकास अल्प होने पर भी यदि वह ज्ञान स्वसन्मुख हो तो पूर्ण ज्ञानस्वरूपी आत्माको स्वसंवेदनसे जान लेता है। केवलज्ञान होनेसे पहले अपूर्णज्ञानमें भी स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे पूर्णज्ञानस्वरूपी आत्माका निःसंदेह निर्णय होता है। जैसे शक्करकी अल्प मात्रासे सम्पूर्ण शक्करके स्वादका निर्णय हो जाता है, वैसे ही ज्ञानकी अल्पपर्यायको अन्तर्मुख करने पर उसमें पूर्णज्ञानस्वभावका निर्णय हो जाता है। पूर्णज्ञान होने पर ही पूर्ण आत्माको जाना जाय–ऐसी बात नहीं है। यदि अपूर्णज्ञान पूर्ण आत्माको न जान सके, तब तो कभी सम्यक्ज्ञान हो ही नहीं सके; इसलिए अपूर्णज्ञान भी स्वसन्मुख होकर पूर्ण आत्माको जान लेता है।

प्रश्न—जिनागममें चैतन्यस्वरूप आत्माका ही ग्रहण करनेके लिये कहा, परंतु 'मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ'–ऐसा लक्षमें लेने पर भेदका विकल्प तो आये बिना रहता ही नहीं? तो फिर विकल्प रहित आत्माका ग्रहण कैसे हो?

उत्तर—प्रथम भूमिकामें गुण-गुणी भेद आदिका विकल्प आयेगा अवश्य; किन्तु आत्माके चैतन्य लक्षणसे उसे भिन्न जानकर अभेद चैतन्यकी तरफ ढलना। भले ही भेद बीचमें आवे, परंतु मेरे चैतन्यमें तो भेद है नहीं–ऐसा जानना। ''चैतन्य अवस्थाका मैं कर्ता, चैतन्यमेंसे मैं करूँ, चैतन्यके द्वारा करूँ–इत्यादि षट्कारक-भेदके विचार भले आवे; परंतु यथार्थपने छहों कारकोंमें चैतन्यवस्तु एक ही है, उस चैतन्यमें कोई भेद नहीं है।''—इस भांति चैतन्यस्वभावकी मुख्यता करके और भेदको गौण करके, स्वरूपसन्मुख होकर भावना करने पर ही चैतन्यका ग्रहण होता है; यही सम्यग्दर्शन है–यही मोक्षका उपाय है।

हो आयुक्षयसे शेष सब ही कर्मप्रकृति विनाश रे।
सत्वर समयमें पहुँचते अर्हन्तप्रभु लोकाग्र रे॥१७६॥

प्रश्न—आप सत् समझनेकी इतनी महिमा गाते है, उससे लाभ क्या ? हम तो व्रतादि करनेमें लाभ मानते हैं।

उत्तर—स्वभावकी रुचिपूर्वक जो जीव सत् समझनेका अभ्यास करता है, उस जीवको क्षण-क्षणमें मिथ्यात्वभाव मन्द पड़ता जाता है, एक समय भी समझनेका प्रयत्न निष्फल नहीं जाता।

अज्ञानी जीव व्रतादिमें धर्म मानकर जो शुभभाव करता है, उसकी अपेक्षा सत् समझनेके लक्षसे होनेवाला शुभभाव ऊंची जातिका है। व्रतादिमें धर्म मानकर जो शुभभाव करता है, उसके तो अभिप्रायमें मिथ्यात्व पुष्ट होता जाता है, जबकि सत् समझनेके लक्षसे प्रतिक्षण मिथ्यात्व हीन होता जाता है और जिसे सत् समझनेमें आ जाय, उसकी तो बात ही क्या ?

प्रश्न—तत्त्वोंका स्वरूप अनुमानज्ञानसे विचारमें आता है या अनुभवसे–कृपया स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—प्रयोजनभूत नवतत्त्वोंका स्वरूप पहले अनुमानसे ज्ञानमें आता है, पश्चात् अनुभव होता है प्रथम शकुन होता है, तत्पश्चात् ही उसका फल आता है न ? उसी प्रकार प्रथम अनुमानज्ञानसे खयालमें आता है पश्चात् अनुभव होता है।

प्रश्न—निर्मल पर्यायको तो अन्तर्लीन कहा है न ?

उत्तर—वह तो स्वसन्मुख झुकी है, इसलिये उस पर्यायको अन्तर्लीन कहा है, परन्तु इतने मात्रसे वह कहीं ध्रुवमें मिल नहीं गई है। ध्रुवके आश्रयसे द्रव्यदृष्टि प्रकट होनेके पश्चात् चारित्रकी शुद्धि भी पर्यायके आश्रयसे नहीं होती। त्रिकाली अन्तःतत्त्व जो ध्रुव तल-दल है, उसके आश्रयसे ही चारित्रकी शुद्धि होती है। यह वस्तुस्थिति है, भगवानकी वाणी है, यह उपदेश भेदज्ञानकी पराकाष्ठाका है। प्रभु ! निर्मल पर्याय बहिर्तत्त्व है, वह निर्मल पर्यायके आश्रयसे टिके नहीं, बढ़े नहीं, वह तो अन्तःतत्त्व जो ध्रुवतत्त्व, उसके ही आश्रयसे प्रकट होती है, टिकती है, बढती है। दया-दानादिके शुभ परिणाम तो मलिन बहिर्तत्त्व है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके परिणाम निर्मल बहिर्तत्त्व है। द्रव्यदृष्टि तो एक शुद्ध अन्तःतत्त्वका ही अवलम्बन लेती है।

विन कर्म, परम, विशुद्ध, जन्म-जरा-मरणसे हीन है।
ज्ञानादि चार स्वभावमय, अक्षय, अछेद, अछीन है ॥१७७॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *चौथे गुणस्थानसे पाँचवाँ गुणस्थान आये तो उसकी ज्ञानीको कैसे खबर पड़ती है?*

समाधान :—उसकी स्वानुभूतिदशा बढ़ती जाती है, अंतरमें परिणतिकी निर्मलता बढ़ती जाती है; गृहस्थाश्रमके योग्य जो परिणाम हों उनसे विरक्तिके परिणाम विशेष बढ़ते जाते हैं, इसलिये वह जान सकता है।

प्रश्न :— *पाँचवें गुणस्थानमें निर्विकल्पदशा बढ़ती जाती है?*

समाधान :—हाँ, निर्विकल्पदशा बढ़ती जाती है और सविकल्पदशामें भी विरक्ति बढ़ती जाती है। निर्विकल्पदशा भी बढ़ती है और सविकल्पदशामें भी विरक्ति अधिक होती है।

प्रश्न :— *चौथेके चौथे गुणस्थानमें भी इसप्रकार फेरफार होता होगा क्या?*

समाधान :—चौथे गुणस्थानकी भूमिका एक की एक हो, परन्तु परिणतिकी तारतम्यतामें अमुक फेर होता है।

प्रश्न :— *किसी लक्षणसे खयाल आता है कि यह सच्ची मुमुक्षुता है?*

समाधान :—''मात्र मोक्ष अभिलाष''—जिसे एक आत्माकी अभिलाषा है, अन्य कोई अभिलाषा नहीं है; प्रत्येक कार्य एवं प्रत्येक प्रसंगमें मुझे तो एक आत्मा ही चाहिये, इसप्रकार जिसे एक आत्माका ही ध्येय है और जो भी संकल्प–विकल्परूप विभाव हों उनमें तन्मयता नहीं है, किन्तु मात्र आत्माकी अभिलाषा ही मुख्यरूपसे वर्तती है उसे सच्ची मुमुक्षुता है। जिसे मात्र आत्माकी अभिलाषा है कि मुझे आत्म-प्राप्ति कैसे हो? स्वानुभूति कैसे हो? और जिसे बाह्यके किसी पदार्थकी इच्छा या अभिलाषा नहीं है; वह किन्हीं बाह्य कार्योंमें जुड़े, तथापि वे सब गौण होते हैं; उसका ध्येय तो एकमात्र आत्म-प्राप्तिका है कि मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? यद्यपि उसको देव–शास्त्र–गुरुकी महिमा आदि सब होते हैं, किन्तु आत्माके बिना उसे कहीं चैन नहीं पड़ता। गुरुदेव कहते थे कि तू अपने

निर्बाध, अनुपम अरु अतीन्द्रिय, पुण्यपापविहीन है।
निश्चल, निरालम्बन, अमर-पुनरागमनसे हीन है॥१७८॥

आत्माको देख, तू आत्माका ज्ञान कर, यह सब (विभाव) तुझसे पृथक् है।—इसप्रकार स्वयं अंतरंग जिज्ञासापूर्वक आत्माको ग्रहण करनेका प्रयत्न करे वह सच्ची मुमुक्षुता है।

प्रश्न :— *ग्यारह अंगका ज्ञान किया हो तथापि शास्त्रमें उस उपयोगको स्थूल कहा है, और जिस उपयोगने चैतन्यस्वभावको ग्रहण किया उसे सूक्ष्म कहा है, उसका क्या कारण ?*

समाधान :—क्योंकि चैतन्यतत्त्वको ग्रहण नहीं किया इसलिये उपयोग स्थूल है। यदि अपने चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करे तो वह उपयोग सूक्ष्म है। ग्यारह अंगका ज्ञान किया उसमें सब जाना, किन्तु अंतरमें आत्माको ग्रहण नहीं किया इसलिये उपयोग स्थूल है।

बाह्य श्रुतज्ञानमें भले ही द्रव्य–गुण–पर्याय जान लिये, सब जाना सही, परन्तु 'मैं यह चैतन्य हूँ' ऐसे ग्रहण नहीं किया इसलिये उपयोग स्थूल है। वह उपयोग स्वसन्मुख नहीं हुआ और बाहर का बाहर रहा इसलिये स्थूल है। जो उपयोग चैतन्यको ग्रहण करे वह उपयोग सूक्ष्म है।

बाहरका चाहे जो जाना तथापि वैसे उपयोगको स्थूल कहा जाता है, क्योंकि स्वयंको ग्रहण नहीं किया। स्वसन्मुख नहीं हुआ, अपनी ओर नहीं मुड़ा, स्वभावको नहीं पहिचाना इसलिये उस बाह्य स्थित उपयोगको स्थूल कहा जाता है।

प्रश्न :— *स्थूल उपयोगका विवेचन किया वह तो जाना, अब सूक्ष्म उपयोगके सम्बन्धमें भी विस्तारपूर्वक बतलानेकी कृपा करें।*

समाधान :—जो उपयोग अपने अंतरमें जाय वह उपयोग सूक्ष्म है। जो अपने सन्मुख हो कि 'मैं यह चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य द्रव्य हूँ, मैं ज्ञायक हूँ'—इसप्रकार अपने स्वभावकी ओर जाय तो उसकी दिशा बदलती है, इसलिये उस उपयोगको सूक्ष्म कहा जाता है।

स्थूल उपयोगकी दिशा तो बाहर की बाहर ही है। यदि अपने अरूपी तत्त्वको ग्रहण करे तो उसकी अंतरमें दिशा फिरे जो उपयोग सूक्ष्म है। अंतरमें जाकर स्वभावको ग्रहण करे वह उपयोग सूक्ष्म है। शान्त होकर अंतरमें दृष्टि करे कि यह स्वभाव है और यह विभाव है;—इसप्रकार अपने स्वभावको ग्रहण करे तो उस उपयोगको सूक्ष्म कहा जाता है।

दुख-सुख नहीं, पीड़ा जहाँ नहिं और बाधा है नहीं।
नहिं जन्म है, नहिं मरण है, निर्वाण जानों रे वहीं ॥१७९॥

बाल विभाग

सुभौम चक्रवर्ती

राजभवन सुंदर ध्वजा-पताका आदिसे सुशोभित था, चारों ओर दीवारों और कोटों पर अद्‌भुत सुंदर चित्र बने हुए थे; छह खंडके अधिपति सुभौम चक्रवर्ती रत्नजड़ित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान थे, पासमें मंत्रीगण तथा अन्य सभासद बैठे थे। संगीत, नृत्य-गान तथा घुंघरुओंकी छमछमसे सबका मन मुग्ध हो रहा था। अचानक एक पूर्वभवका बैरी देव बैर लेनेकी इच्छासे व्यापारीका भेष धारण करके चक्रवर्तीको एक फल भेंट करते हुए कहता है कि–''हे राजन् ! आपने ऐसा मधुर फल कभी नहीं खाया होगा।''

राजा फल खाकर बहुत प्रसन्न होता है और उससे पूछता है कि–हे भाई! ''आप ऐसा सुंदर स्वादिष्ट फल कहाँसे लाये ?'' व्यापारीने कहा–''राजन् ! हमारे देशमें चलिये, मैं वहाँ आपको ऐसे अनेकों फल खिलाऊँगा।''

देखो ! रसना इन्द्रियकी लोलुपताके कारण चक्रवर्तीका विवेक भी नष्ट हो गया। उसने विचार तक नहीं किया कि भला चक्रवर्तीके समान भोगोपभोगकी सामग्री किसे मिल सकती है ? वह तो रसना इन्द्रियकी तीव्र आसक्तिके कारण उन फलोंका भक्षण करनेमें ही सम्पूर्ण सुख मानने लगा; इसलिये विचारने लगा कि सब सामग्री होने पर भी इस फलकी कमी मेरे यहाँ क्यों रहे ? अर्थात् इसकी भी कमी नहीं रहना चाहिये। यदि वह चाहता तो अपने आज्ञाकारी देवों द्वारा अनुपम फल मँगवा सकता था, किन्तु उसे तो उस फलका स्वाद चखनेकी लोलुपताका ऐसा नशा चढ़ गया कि अब उसे अपने यहाँकी सब सामग्री निरस लगने लगी। सुभौम चक्रवर्तीने विचार किया कि यदि मैं वहाँ अकेला जाऊँगा तो अकेला ही फल खा सकूँगा। इसलिये मुझे वहाँ सकुटुम्ब जाना चाहिये। ऐसा विचार कर चक्रवर्तीने विशाल चर्मरत्न नामक नौकामें स्त्री-पुत्रादि सहित समुद्रमें प्रयाण किया।

अब तो देव मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था कि अकेले राजाको ही नहीं, किन्तु उसके

इन्द्रिय जहाँ नहिं, मोह नहिं, उपसर्ग, विस्मय भी नहीं।
निद्रा, क्षुधा, तृष्णा नहीं, निर्वाण जानो रे वहीं ॥१८०॥

समस्त परिवारको मैं डूबो दूँगा। साथ ही उसे यह भी विचार आ रहा था कि जिसके हजारों देव सेवक हैं, नव निधि और चौदह रत्न हैं, उसे मार डालना कोई आसान काम नहीं है।

सुभौम चक्रवर्ती समुद्रकी तरंगों पर तैरती हुई नौकामें हास्य-विलास करता हुआ सुख सागरमें निमग्न हो रहा था कि तभी अचानक उस देव द्वारा चलाये गये भयंकर तूफानमें नौका डोलने लगी, जिससे चक्रवर्तीका हृदय काँपने लगा। उसने भयभीत होकर देवसे पूछा कि अब बचनेका कोई उपाय है ? पापी राजाके पापका उदय होनेसे और देवको दुष्टबुद्धि उत्पन्न होनेसे उसने कहा कि सागरके मध्यमें दूसरा कोई उपाय नहीं है। हाँ, यदि आप अनादि-निधन नमस्कार मंत्र, अपराजित मंत्र, जो णमो अरिहंताणं है, उसे जलमें लिखकर पैरसे मिटा दें तो सब बच सकते हैं।

वह हित-अहितका विवेक छोड़कर तो घरसे बाहर निकला ही था, अपने पास सर्व सम्पत्ति और अनुपम पुण्यका स्थान ऐसे चक्रवर्ती पदका भी जिसने विवेक खो दिया था और अनजान व्यक्तिका विश्वास करके उसके साथ एक तुच्छ फल खानेके लोभमें चला गया था–ऐसा वह सुभौम चक्रवर्ती इस अनित्य जीवनकी चाहसे और मौतके भयसे ज्यों ही पानीमें णमोकार महामंत्र लिखकर पैरसे मिटानेको तैयार हुआ, त्यों ही पापका रस अतितीव्र होने लगा और नौका डूबने लगी। तब पूर्वका बैरी देव कहने लगा कि ''मैं वही रसोइया हूँ, जिसके ऊपर तुमने गरम-गरम खीर डाली थी और जिसने तड़प-तड़प कर प्राण त्याग दिये थे। आर्तध्यानसे मैं व्यंतर जातिका देव हुआ हूँ। अवधिज्ञानके द्वारा पूर्वभवका बैर याद आने पर मैंने उसका बदला लेनेके लिये ही यह उपाय किया है।''

अब पश्चाताप करनेसे क्या होता ? चक्रवर्ती भी ऐसे अपमानजनक शब्द सुनकर तथा कुटुम्ब-परिवार सहित अपना घात देखकर तीव्र संक्लेश भावसे मरणको प्राप्त हुआ और सातवें नरकमें गया, जहाँ ३३ सागरोंके लिये वह अनन्त दुःख सागरमें डूब गया। यह जीव अपने असली स्वरूपको भूलकर तीव्रमोहके कारण महान दुःखको भोगता है। ज्ञानी निष्कारण करुणासे सम्बोधन करते हैं कि–अनन्तानंत कालमें महान दुर्लभ मनुष्य पर्याय मिली, इस अवसर पर भी, जो विषयोंमें लीन रहते हैं, वे राखके लिये रत्नको जलाते हैं। यह जीव आधी आयु तो निद्रादि प्रमादमें गँवाता है, कुछ पापमें और जो समय शेष रहता है उसमें कदाचित्

कुधर्म माननेवालोंके पास जाय तो यहाँ मिथ्या मान्यता दृढ़ करके जीवन बर्बाद कर देता है। उपरान्त इन्द्रियोंका दासत्व, व्यसनोंकी गुलामी, मिथ्यात्व, मानादि कषाय द्वारा जीव हित-अहितका भान भूल जाता है।

मिथ्यात्व और क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायकी प्रवृत्तिसे क्षण-क्षणमें जो अपना भयानक भावमरण होता है, उससे बचनेके लिये प्रथम तो सत्समागमसे निर्मल तत्त्वज्ञानको प्राप्त करना चाहिये। सच्चा सुख अंतरमें है, उसको भूलकर दुःखको ही सुख माननेरूप झूठे उपाय द्वारा यह जीव अनादिसे दुःखको ही भोगता है; इसलिये हे जीव ! पुनः पश्चाताप करनेका समय न आये ऐसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका प्रयत्न कर ! प्रयत्न कर !! इससे शुद्ध स्वरूपमें रुचि होगी और विषय कषाय आदि पाप स्वयमेव नष्ट होने लगेंगे। कहा भी है—

''जब निज आतम अनुभव आवे, तब और कछु न सुहावे॥ जब निज..॥
रस नीरस हो जात तत्क्षण, अक्ष-विषय नहिं भावे॥ जब निज...॥''

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ५-४५ से ६-०५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१५वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-१५ से ४-१५ : श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-१५ से ४-४५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री अष्टप्राभृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **दशलक्षणपर्युषणपर्व :** भादों शुक्ला ५, रविवार, ता. ८-९-२०२४से भादों शुक्ला १४, मंगलवार, ता. १७-९-२०२४ तक दस दिन श्री दशलक्षणपर्युषणपर्व, श्री दशलक्षण मण्डल विधानपूजा तथा मुनिधर्ममहिमा भरे अध्यात्म ज्ञान-वैराग्य-भक्तिकी उपासनापूर्वक मनाया जायेगा। उसी प्रकार ता. १५-९-२०२४, रविवार से ता. १७-९-२०२४, मंगलवार तक तीन दिन 'रत्नत्रयधर्म' पर्व भी मनाया जायेगा ।

❀ **उत्तम क्षमावणीपर्व :** आश्विन कृष्णा प्रतिपदा, बुधवार, ता. १८-९-२०२४ के दिन क्षमावणीपर्व क्षमावणीपूजा, सांवत्सरिक आलोचना एवं भक्तिपूर्वक मनाया जायेगा।

श्री गुजरात-सौराष्ट्र भगवती महिला मंडल द्वारा आयोजित

महिला मंडल शिरछत्र स्वात्मानुभवी भगवती माता पूज्य बहिनश्रीका १११वाँ मंगल जन्मोत्सव हर्षोल्लास सह सानंद संपन्न

हमारे परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री एवं भगवती माता पूज्य बहिनश्रीके अध्यात्म-साधनातीर्थ सुवर्णपुरीमें श्री गुजरात-सौराष्ट्र भगवती महिला मंडल द्वारा आयोजित महिलामंडल शिरछत्र स्वात्मानुभवी पूज्य बहिनश्रीका १११वाँ महामंगलकारी जन्मोत्सव ता. १७-८-२०२४ शनिवार से २१-८-२०२४, बुधवार तक अत्यंत हर्षोल्लास सह मनाया गया। इस प्रसंगको भव्यरूपसे मनाया जाय ऐसी भगवती महिलामंडल की भावना थी। भगवती महिला मंडलकी बहिनोंको यह उत्सव मनानेका अति उत्साह था। डोम १११ के अंकसे विशेषरूपसे शोभायमान था तथा मंदिरोंके प्रवेशद्वारोंको भी विशेषरूपसे सजाया गया था। उत्सवके प्रथम दिन सुवर्णपुरी प्रातः पूज्य गुरुदेवश्रीके मांगलिक और 'तू परमात्मा है'की वाणीसे गूंज उठी और धर्ममाता पूज्य बहिनश्रीकी विडियो तत्त्वचर्चा एवं धर्मध्वजारोहण करके महोत्सवका शुभारंभ हुआ।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

जन्मजयंती उत्सवमें श्री समवसरण विधान पूजाका आयोजन परमागममंदिरके आगेके भागमें पूजन मंडपमें किया गया था। पूजनमंडपके मध्यमें तीर्थंकर श्री महावीर भगवानके समवसरणकी रचना की गई थी। जिसमें विविध भूमि, सभा आदि अनुसार समवसरणकी रचना की गई थी। जिसमें चारों दिशामें महावीर भगवानकी स्थापना की गई थी। पूजनमें समवसरणकी रचनाओंका भाववाही सरल भाषामें सुंदर वर्णन है। पूजनार्थी मानों कि समवसरणमें ही भगवानका पूजन कर रहे हो ऐसी भावनाका अनुभव कर रहे थे। आयोजक द्वारा मुमुक्षुओंके लिये पूजन हेतु सुंदर व्यवस्था की गई थी।

महोत्सवके दिनोंमें दैनिक कार्यक्रममें प्रात ६.०० से ६.२० पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा, ७.४५ से ९ श्री समवसरण विधान पूजा, ९.०० से १०.०० पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री समयसार पर सीडी प्रवचन तत्पश्चात् प्रासंगिक घोषणाएँ, पूज्य बहिनश्रीकी भक्ति, १०.३० से ११.३० धार्मिक शिक्षण वर्ग, दोपहरमें योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन, ४.०० से ४.३० श्री जिनेन्द्र भक्ति पश्चात् धार्मिक शिक्षणवर्ग, संध्याको ६.४५ से ७.३० महिला मंडलों द्वारा सांजी भक्ति, ७-४५ से ८-४५ बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका विडियो प्रवचन तत्पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम—इस प्रकार कार्यक्रम सुचारुरूपसे चलते थे।

इस महोत्सवमें प्रथम दिन भगवती कार्निवल और भगवती ओडिटोरियमका उद्घाटन ट्रस्टीगण, भगवती महिलामंडल और मुमुक्षुगणकी उपस्थितिमें किया गया था। उत्सव दरमियान संध्याको विविध महिला मंडलों द्वारा मंडपमें सांजीभक्तिका सुंदर आयोजन किया गया था। जिसमें प्रथम विविध महिला मंडलोंकी महिलाओं, बालिकाओं द्वारा भक्ति सह नृत्य, गरबा आदि द्वारा अपनी उमंगको प्रस्तुत करते थे पश्चात् भजनमंडली द्वारा पूज्य बहिनश्रीकी भाववाही भक्ति करनेमें आती थी। उत्सवके प्रत्येक कार्यक्रममें मुमुक्षुभाई-बहिन अति उल्लाससे भाग लेते थे।

इस महोत्सवमें रात्रिको दर्शाये गये सांस्कृतिक कार्यक्रममें प्रथम दिन जैन रामायण आधारित नाटक-

फिल्म दर्शायी गई थी। दूसरे दिन हालमें संपन्न हुए जम्बूद्वीप-बाहुबली पंचकल्याणककी शोर्ट फिल्म तथा तीसरे दिन सम्यक्त्व सन्मुख परिणति नाटक-फिल्म तथा चौथे दिन पूज्य बहिनश्रीके जीवन पर आधारित 'ज्ञानवैभव' नाटकको अति ही भाववाही, भव्यतासे प्रस्तुत किया गया था।

भव्य रथयात्रा

महोत्सवके चौथे दिन श्री महावीर भगवानकी रथयात्राका आयोजन किया गया था। भगवानके मंगलरथके साथ विविध बगी और पारणाझुलनका फ्लोट भी शामिल था। इस रथयात्रामें आबाल-वृद्ध भाईयो और बहिनों भक्तिरसमें तन्मय होकर नृत्य करते करते भाववाही भजन गाते थे।

जन्म महोत्सव श्रावण वद-२ का अभूतपूर्व कार्यक्रम

उत्सवके मुख्य दिन पूज्य गुरुदेवश्री पूर्वमें राजकुमारके भवमें मित्र शेठपुत्र देवाभाईके साथ श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें दर्शन हेतु आते है तभी श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी उपस्थिति है वह दर्शाया गया था और दूसरी ओर धातकीखंडके भावि तीर्थंकरका समवसरण स्टेज पर बनाया गया था। प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्रीके महामंगलकारी जन्मदिनको प्रातः देव-शास्त्र-गुरुदर्शन तथा पूज्य बहिनश्रीकी चर्चा रखी गई थी। तत्पश्चात् श्री समवसरण विधानका समापन, पूज्य गुरुदेवश्रीका कल्याणकारी सीडी प्रवचन बादमें विविध प्रासंगिक उद्घोषणाएँ हुई पश्चात् भगवती महिला मंडलकी बहिनो द्वारा बहिनश्रीकी प्रतिकृतिको भक्तिपूर्वक नृत्य करते हुए स्टेज पर लिया गया इस प्रसंग पर ब्रह्मचारी बहिनों भी बहिनश्रीके आगमन पर चामर नृत्य द्वारा अपनी भक्ति कर रही थी। इस प्रसंग पर भजनमंडली द्वारा स्वागत गीत एवं भक्तिकी धून मचा दी थी। इस प्रसंग पर मुमुक्षुका उत्साह अतीव था। पश्चात् बहिनश्रीकी बधाईका कार्यक्रम हुआ था जिसमें मुमुक्षुओंने हर्षोल्लास सह बहिनश्रीकी बधाई की थी।

महोत्सवके विशिष्ट कार्यक्रम

(१) भगवती कार्निवलमें महिलामंडल द्वारा बनाई गई ज्ञानके साथ रसप्रद माहिती सभर जम्बूद्वीप अकृत्रिम चैत्यालय और अन्य धार्मिक गेमको खेला गया।

(२) आराधना ओडिटोरियममें सती अंजना, सती राजुल तथा धर्मकी शोभा तीन शोर्ट फिल्म दर्शाई गई जिसके दिनमें पांच शो रखे गये थे।

(३) सम्यक्त्व सन्मुख क्वीझ जो ओनलाईन रखी गयी थी जिसमें प्रतिदिन प्रथम, द्वितीय, तृतीय विजेताओंको उसी दिन रात्रिको इनाम दिये जाते थे।

(३) उत्सवके चौथे दिन पूज्य बहिनश्रीके जीवन आधारित ''ज्ञान वैभव'' नाटक को सुंदर अभिनय, अध्यात्मरस भरपूर संवाद कि जिसके प्रत्येक संवादमें भवभ्रमणसे छूटनेके लिये और आनंदकी प्राप्ति हेतु सम्यग्दर्शनका माहात्म्य और उसकी पूज्य बहिनश्रीको प्राप्ति एवं जातिस्मरण आदि प्रसंगको दर्शाता हुआ, सुंदर वेषभूषा, आधुनिक लाईटींग और साउन्ड इफेक्ट देकर अति ही भव्यतासे प्रस्तुत किया गया था।

महोत्सव मनानेका आयोजक श्री गुजरात-सौराष्ट्र भगवती महिला मंडलका उत्साह और आयोजन प्रशंसनीय था। आयोजक द्वारा मुमुक्षुके लिये आवास एवं भोजनकी सुंदर व्यवस्था की गई थी।

क्षमापना

आत्मधर्मका लेखन-संपादन पूज्य गुरुदेवश्रीकी कृपादृष्टिमें सिर्फ स्व-परके आत्मार्थकी पुष्टि हो यह एक ही ध्येयपूर्वक किया जा रहा है; हृदयमें देव-गुरु-धर्मकी भक्तिपूर्वक और साधर्मीप्रेमपूर्वक इसका संकलन किया जाता है। फिर भी यदि कोई भूल हो गई हो या किसीके मनको ठेस(चोट) पहुँची हो तो अंतरके भावपूर्वक देव-गुरु-धर्म, प्रत्यक्ष उपकारी संतों तथा साधर्मी मुमुक्षुओंसे क्षमायाचना करता हूँ।

–तंत्री

श्री कहानगुरु जनकल्याण ट्रस्ट

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट अंगर्गत श्री कहानगुरु जनकल्याण ट्रस्ट (रजीस्टर्ड **80G** इन्कमटेक्स अंतर्गत) कार्यरत रहा है। सोनगढमें निवास करते मुमुक्षुओंको सामान्य बिमारीमें बाहरगाँव जाना न पड़े इस हेतुसे अस्पताल कार्यरत हो गया है। इस अस्पतालका उद्धाटन मुख्य दाता सरलाबेन सुरेशभाई संघवी (स्मृतिशेष श्री सुरेशभाई संघवीकी यादमें) द्वारा किया गया है। इस ट्रस्टमें अन्य कई मुमुक्षुओंने दानकी घोषणा की है। अभी भी जिन्हें अस्पतालमें दान देनेकी भावना हो वह श्री नरेन्द्रभाई शाह **Whats app No. 9228901187** पर संपर्क कर सकते हैं।

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं .....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp.....** ..... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : .....

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

संपर्क नंबर : .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

● चैतन्यके चैतन्यमें एकाग्र होने पर भेद नहीं रहता। इस एक ही श्लोक (२७८वाँ कलश) में यह चर्चा कि है कि 'अज्ञान अनादिका है तथा उसका अभाव कैसे हो' ? वह बात की है। डोरेकी लच्छीमें गुच्छे होकर गाँठे पड़ गयी हों और उन्हें सुलझाना हो, तब सुलझाने पर गाँठे नहीं रहती; वैसे ही आत्माकी पर्यायमें अज्ञानरूपी उलझन पैदा हो गयी है, उसे ज्ञानसे सुलझाने पर वह कुछ लगती ही नहीं। अंश-बुद्धिमें राग-द्वेष-अज्ञान आदि (स्व-रूप) भासित होते थे, परन्तु स्वभाव-बुद्धि होने पर वे कुछ भी भासित नहीं होते; इसमें मोक्षमार्ग समाहित कर दिया है, हजारों शास्त्रोंका यही सार है।६५१।

● जो आत्मख्यातिकी टीकाको सुनते हैं व उसका वांचन करते हैं - उन्हें सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रकट होता है तथा मोहका नाश होता है और परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है; अतः मुमुक्षुओंको इसका निरन्तर अभ्यास करना योग्य है। ''मैं चिदानन्द ज्ञाता हूँ'' -ऐसा समझनेकी जिसे आवश्यता है, रुचि है व भावना है, उन मुमुक्षुओंको इस आत्मख्याति-टीका अर्थात् चैतन्यस्वभावका बारम्बार अभ्यास करना चाहिए। 'समयसार' अभेद आत्माको बतलानेवाला है, अतः इसका निरन्तर अभ्यास करना योग्य है।६५२।

● जब-तक ज्ञानमें तत्त्वकी अयथार्थता है तब-तक तत्त्वमें स्थिरता नहीं होती। ज्ञानकी विपरीततामें आत्म-एकाग्रता नहीं जम पाती। इसीलिए कहते हैं कि आत्मा ज्ञानानन्द है - उसकी रुचि करो उसका अवलोकन करो।६५३।

● व्यवहार रत्नत्रय भी शुभराग है, निमित्त मात्र है। इसको भिन्न जानकर, शुद्धात्माको उपादेयरूपसे निरन्तर अंगीकार करना ही इस 'समयसार व द्वादशांगका' सार है। त्रिकाली-चिदानन्दका आलम्बन ही मोक्षका कारण है। त्रिकाल-ध्रुवशक्ति कारणपरमात्मा ही एक मात्र उपादेय है। जो पराश्रित-राग व व्यवहार रत्नत्रयको वीतरागी-धर्मका कारण मानते हैं - उन्हें धर्म नहीं वरन् मिथ्यात्वका आस्रव है।६५४।

● धर्मीको अन्य धर्मके प्रति प्रेम उमड़ता नहीं है। सम्यग्दृष्टिको सच्चे गुरु व साधर्मीके प्रति प्रेम आए बिना नहीं रहता। वे द्वेष-भाव नहीं करते। मेरी कीर्तिकी अपेक्षा उसकी मान-कीर्ति अधिक हो गयी - ऐसा द्वेष नहीं करते। कदाचित् शिष्य पहले मोक्ष चला जाए तो भी उन्हें द्वेष नहीं होता। जैसे किसीको अपने पुत्रसे प्रेम हो और वह यदि अमीर हो जाए तो उसके प्रति द्वेष नहीं करता, उल्टा प्रेम तथा उल्लास दिखलाता है; वैसे ही शिष्यकी दशा-विकसित होती जानने पर धर्मात्माको उसके प्रति द्वेष नहीं होता।५५६।

३६
आत्मधर्म
सितम्बर-२०२४
अंक-१ ● वर्ष-१९

Posted at Songadh PO
Publish on 5-09-2024
Posted on 5-09-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org